# तिब्बत की व्यथा :
# चीनी दमन की क्रूर कथा

# तिब्बत की व्यथा :
# चीनी दमन की क्रूर कथा

तिब्बत वॉईस

प्रथम संस्करण (हिन्दी) : दिसम्बर 1999

हिन्दी रूपांतरकार : **डा० चमन लाल गुप्त**
संयोजक, भारत तिब्बत सहयोग मंच

**आवरण पृष्ठ चित्र:** ल्हासा स्थित सेरा मठ के आँगन में साम्यवादी चीन द्वारा नष्ट की गईं बुद्ध की प्रतिमाएं एवं धार्मिक कला-कृतियां, 1991

प्रकाशक :

तिब्बत वॉईस
नरथांग बिल्डिंग
धर्मशाला-176215
हिमाचल प्रदेश।
फोन : (01892) 22457, 22510, 24662
फैक्स : (01892) 24957
ई-मेल : indiadesk@diir.gov.tibet.net
वैबसाईट : www.tibet.com or www.tibetnews.org

मुद्रक :

हीरो प्रिंटर्ज़, धर्मशाला फोन: 01892-22388

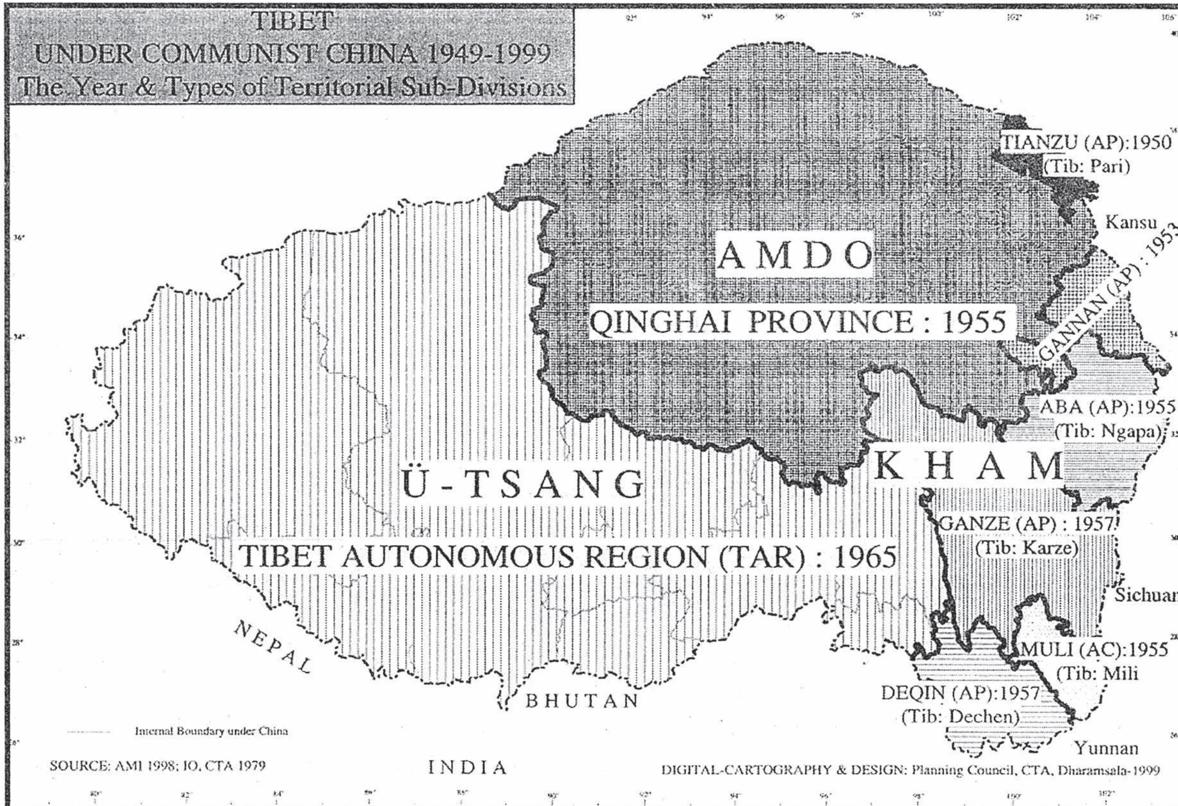
TIBET
UNDER COMMUNIST CHINA 1949-1999
The Year & Types of Territorial Sub-Divisions
AMDO
QINGHAI PROVINCE : 1955
TIANZU (AP):1950
(Tib: Pari)
Kansu
GANNAN (AP) : 1953
ABA (AP):1955
(Tib: Ngapa)
KHAM
Ü-TSANG
TIBET AUTONOMOUS REGION (TAR) : 1965
GANZE (AP) : 1957
(Tib: Karze)
Sichuan
MULI (AC):1955
(Tib: Mili
DEQIN (AP):1957
(Tib: Dechen)
Yunnan
NEPAL
BHUTAN
INDIA
Internal Boundary under China
SOURCE: AMI 1998; IO, CTA 1979
DIGITAL-CARTOGRAPHY & DESIGN: Planning Council, CTA, Dharamsala-1999

# विषय सूची


1. तिब्बत की स्थिति ............................................ 1
2. तिब्बत पर आक्रमण और अवैध आधिपत्य ............................ 31
3. राष्ट्रीय-विद्रोह ............................................ 38
4. परम्परागत तिब्बती समाज एवं ................................... 45
   भविष्य के प्रजातान्त्रिक तिब्बत की रूपरेखा
5. मानवाधिकार ................................................ 52
6. सामाजिक आर्थिक स्थितियां और उपनिवेशवाद ....................... 66
7. धर्म और राष्ट्रीय पहचान ....................................... 84
8. जनसंख्या स्थानान्तरण एवं नियन्त्रण ............................. 94
9. तिब्बत के पर्यावरण की दशा .................................... 103
10. सैनिकीकरण एवं क्षेत्रीय शान्ति ................................. 112
11. समाधान की खोज ............................................. 117

# भूमिका

जैसे जैसे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की तिब्बत समस्या में रुचि निरन्तर गहराती जा रही है वैसे वैसे तिब्बत विषयक जानकारी की मांग भी बढ़ती जा रही है। शीत-युद्ध के समय की दो महान विश्व शक्तियों के राजनैतिक-वैचारिक संघर्ष का दबाव अब विश्व पर नहीं है इसलिए सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं अब अन्य ज्वलंत समस्याओं पर विचार कर सकती हैं जैसे कि 'तिब्बत की स्थिति' पर। अनेक सरकारें विदेश नीति के मोर्चे पर अपनी नीतियों पर पुनर्विचार की प्रक्रिया से गुज़र रही हैं। उन्हें शीत-युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय वास्तविकताओं के प्रकाश में अपनी तिब्बत नीति पर भी पूरी तरह पुनर्विचार करना चाहिए।

विश्व के विभिन्न भागों में आयोजित संसदों और सम्मेलनों में तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति और उसमें अन्तर्निहित राजनैतिक कारणों के दृष्टिगत तिब्बत समस्या को संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाने के प्रयासों का चीन लोक गणराज्य की ओर से कड़ा विरोध होता रहा है। इसका एक परिणाम यह हुआ कि स्टालिनवादी, माओवादी परम्परा में प्रचारात्मक पुस्तिकाओं की झड़ी सी लग गई जिनके द्वारा विदेशी पाठकों को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया जाता रहा कि तिब्बत पर चीन के शासन का अधिकार और औचित्य क्या है और इससे तिब्बतियों को कितना लाभ पहुँचा है।

वर्तमान दस्तावेज *'तिब्बत की व्यथा: चीनी दमन की क्रूर कथा'*, तिब्बत समस्या विषयक नवीन तथा संक्षिप्त जानकारी की मांग को पूरा करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। साथ ही यह चीनी दुष्प्रचार, विशेषकर 1992 में चीनी राज्य-परिषद द्वारा प्रकाशित श्वेत-पत्र *''तिब्बत : उसका स्वामित्व एव मानवाधिकारों की स्थिति''* का उत्तर भी है। चीनी प्रचार-तन्त्र द्वारा प्रकाशित प्रत्येक गलत-बयानी का उत्तर देने योग्य साधन निर्वासित तिब्बत सरकार के पास नहीं हैं। क्योंकि सत्य तिब्बती लोगों के पक्ष में है इसलिए हमें समय-समय पर तथ्यों को पुनः सीधे-सीधे बताने की आवश्यकता अनुभव होती है और हमारा विश्वास है कि इससे सत्य और न्याय का पक्ष मजबूत होगा।

प्रस्तुत प्रकाशन अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों को छूता है। यह तिब्बत की स्थिति के मूलभूत प्रश्न को छूता है। इस पुस्तिका में तिब्बत पर 'चीनी आधिपत्य' के अनौचित्य तथा तिब्बती जनता के 'आत्म-निर्णय' का अधिकार; ''सत्रह-सूत्रीय समझौता'' और तिब्बत की स्थिति पर उसका प्रभाव; चीनी आधिपत्य के विरोध से जुड़ी घटनाएं और दलाई लामा का भारत की ओर निष्क्रमण; चीनी आधिपत्य से पूर्व तिब्बत की सामाजिक व्यवस्था तथा चौदहवें दलाई लामा द्वारा प्रारम्भ किए गए प्रजातान्त्रिक सुधार; चीनी आधिपत्य में तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति; धार्मिक स्वतन्त्रता का निषेध; तिब्बती पर्यावरण की स्थिति; तिब्बत के सैनिकीकरण से जुड़े मुद्दे तथा तिब्बत-समस्या के समाधान के लिए चल रहे प्रयासों को छुआ गया है।

तिब्बत की स्थिति के जिस पक्ष पर आज तक पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया और जो तिब्बत में होने वाले घटनाचक्र को समझने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है वह है चीनी शासन की तिब्बत के प्रति मूलभूत उपनिवेशवादी नीति।

उपनिवेशवाद को हम गत दो शताब्दियों में पश्चिम में विकसित उपनिवेशवाद के रूप में समझते हैं। परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ में 'तिब्बत प्रश्न' पर हुए वाद-विवादों में मलेशिया, आयरलैण्ड और अन्य सरकारों ने इस ओर इंगित किया कि उपनिवेशवाद अपने सभी रूपों में पूरी तरह नष्ट किया जाना चाहिए फिर वह भले ही पश्चिमी उपनिवेशवाद हो या पूर्वी।

स्वयं चीनी भी तिब्बत को उपनिवेश के रूप में ही देखते हैं अर्थात् मूल चीन के भाग के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसे क्षेत्र के रूप में जिसके शोषण और स्वामित्व का अधिकार उनहें सात सौ वर्ष पुराने या कम से कम दो सौ वर्ष पुराने सम्बन्धों के आधार पर प्राप्त है। यह दृष्टिकोण चीन द्वारा प्रकाशित श्वेत-पत्र से स्पष्ट झलकता है जो कि उस देश के 'स्वामित्व' की बात करता है जिसे अपना भाग भी मानता है। चीन द्वारा तिब्बत पर 'स्वामित्व' की बात अपनी मूल प्रकृति में उपनिवेशवादी भी है और साम्राज्यवादी भी।

उपनिवेशवाद के अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जो कि तिब्बत पर चीनी शासन में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। उपनिवेशवाद के सर्वाधिक सामान्य तत्त्व हैं :-

* विदेशी सत्ता का आधिपत्य।
* सैनिक शासन द्वारा प्रशासनिक नियन्त्रण और असमानता पर आधारित सन्धि।
* बार-बार इस बात पर जोर देना कि उपनिवेश, मातृदेश का अनिवार्य हिस्सा है।
* औपनिवेशिक सत्ता के हाथ में स्थिति प्रशासनिक और आर्थिक शक्ति द्वारा नियन्त्रण स्थापन अथवा सैनिक शक्ति द्वारा नियन्त्रण करना।
* उपनिवेशवाद के शिकार लोगों द्वारा सक्रिय अथवा अहिंसात्मक ढंग से औपनिवेशिक सत्ता का नकार।
* औपनिवेशिक सत्ता का विरोध करने वालों का आवश्यकता पड़ने पर बलपूर्वक दमन।
* उग्र-राष्ट्रवाद एवं भेदभाव परक नीति।
* 'संस्कारित करने' का दावा करते हुए बाहरी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं वैचारिक मूल्यों को थोपना।
* औपनिवेशिक सत्ता के लाभ के लिए उपनिवेश में ऐसे आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को हाथ में लेना जिनसे उपनिवेश के प्राकृतिक-स्रोतों का शोषण हो सके।
* जनसंख्या स्थानान्तरण को बढ़ावा देना जिसमें महानगरों की जनसंख्या को उपनिवेश में बसाना तथा जनसंख्या नियन्त्रित करने के अन्य उपाय करना।
* उपनिवेश के प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति उपेक्षा।
* राजनैतिक तथा आर्थिक मूल्य चुका कर भी उपनिवेश से चिपके रहने की उत्कट इच्छा।

इस दस्तावेज में इनमें से अधिकांश विषयों पर चर्चा की गई है। इनमें से कुछ की चर्चा तिब्बत विषयक चीनी श्वेत-पत्र में इस प्रकार हुई है कि उससे चीनी नेतृत्व की तिब्बत के प्रति साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी नीतियों की पुष्टि होती है।

सचिव<br>सूचना एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबन्ध विभाग<br>निर्वासित तिब्बत सरकार<br>धर्मशाला (हि०प्र०)

# 1
# तिब्बत की स्थिति

1949 में जब चीन की जन मुक्ति सेनाओं ने तिब्बत पर आक्रमण किया उस समय तिब्बत कानूनी एवं तथ्य रूप में एक स्वतन्त्र राष्ट्र था। चीनी सेनाओं का तिब्बत पर आधिपत्य जमाना एक सर्वप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र पर आक्रमण करने के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघन का सूचक भी था। आज भी लाखों सैनिकों के बल पर तिब्बत पर चीन का आधिपत्य न केवल अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का निरन्तर चलने वाला उल्लंघन है बल्कि तिब्बती जनता के स्वतन्त्रता के अधिकार का भी हनन है।

चीन की साम्यवादी सरकार यह दावा करती है कि उसे तिब्बत पर 'स्वामित्व' बनाए रखने का अधिकार है। वह अपना यह अधिकार 1949 में तिब्बत पर सैनिक विजय से अथवा उस पर 1959 से वास्तविक नियन्त्रण से नहीं मानता। चीन अपना यह दावा तिब्बत पर 1951 में लादे गए तथाकथित "तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति के लिए सत्रह सूत्रीय समझौते" से भी नहीं मानता।

चीन का यह तथाकथित कानूनी दावा चीन और तिब्बत के ऐतिहासिक सम्बन्धों पर आधारित है जो मुख्य रूप से चीन के मंगोल और मांचू शासकों के तिब्बती लामाओं के साथ रहे और न्यूनाधिक मात्रा में चीनी शासकों और तिब्बती लामाओं के बीच रहे। चीनी सरकार जिन घटनाओं का सहारा लेती है वे सदियों पूर्व मंगोल साम्राज्यवाद के चरमोत्कर्ष के समय घटित हुईं जबकि मंगोलों का राजनैतिक प्रभुत्व एशिया के अधिकांश हिस्सों तथा पूर्वी यूरोप के कुछ भागों पर हो गया था। चीनी शासक मांचू शासकों के समय को, विशेषकर अठारहवीं शताब्दी के समय को आधार बनाते हैं जबकि मांचुओं ने चीन पर शासन किया था और उनका प्रभाव पूर्वी एवं मध्य एशिया में फैला था जिसमें तिब्बत भी आ जाता है।

इस बात पर विवाद नहीं है कि तिब्बत के लम्बे इतिहास में ऐसे समय आए जबकि तिब्बत न्यूनाधिक मात्रा में विदेशी शासकों के प्रभाव में रहा, जिनमें मंगोल, नेपाल के गोरखे, चीन के मांचू शासक तथा भारत के अंग्रेज शासक भी आते हैं। इतिहास के कुछ अन्य दौरों में तिब्बत का अपने पड़ोसी राज्यों पर आधिपत्य और प्रभाव रहा जिनमें चीन भी एक था। विश्व में शायद ही ऐसा कोई राष्ट्र मिले जो इतिहास के किसी न किसी दौर में किसी अन्य राष्ट्र के अधीन न रहा हो। तिब्बत के सन्दर्भ में विदेशी प्रभाव एवं हस्तक्षेप का दौर अत्यधिक सीमित रहा है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि मंगोल, चीनी और मांचू शासकों का जो भी राजनैतिक प्रभाव तिब्बत पर रहा वह वैयक्तिक अधिक था क्योंकि किसी भी समय यह नहीं माना जा सकता कि तिब्बत का विलय चीन में अथवा चीन के साथ हुआ।

तिब्बत का प्राचीन इतिहास कितना ही रोचक क्यों न हो, चीनी आक्रमण के समय तिब्बत की स्थिति का मूल्यांकन निश्चित रुप से उसकी आधुनिक इतिहास में स्थिति के आधार पर ही होना चाहिए, विशेष रूप से 1911 से चीन के साथ उसके सम्बन्धों के आधार पर मूल्यांकन हो क्योंकि 1911 में ही चीनी लोगों ने विदेशी मांचू शासकों से अपने को मुक्त किया था और वे अपने देश के स्वामी बने थे। प्रत्येक राष्ट्र इतिहास के किसी न किसी दौर की दुहाई देकर पड़ोसी राष्ट्रों पर अपने अधिकार का औचित्य स्थापित कर सकता है। ऐसा व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय कानून एवं व्यवहार की दृष्टि से अमान्य है।

चीनी श्वेत-पत्र, *''तिब्बत : उसका स्वामित्व एवं मानवाधिकारों की स्थिति''* के पाठक का ध्यान सहज ही इस तथ्य की ओर आकर्षित हो जाता है कि चीनी शासक 1949 से पहले के कुछ दशकों के इतिहास पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते। ऐसा इसलिए है कि क्योंकि 1911 से 1951 तक (केवल 1951 में चीन ने तिब्बत पर पूर्ण आधिपत्य जमाया था।) कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे सिद्ध हो कि तिब्बत पर चीन का इस समय में अधिकार या प्रभाव था। वास्तव में तथ्यों की बहुसंख्या इसके विपरीत साक्षी देती है और सिद्ध होता है कि तिब्बत वास्तव में इस समय सर्व प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र था,

चीन से पूरी तरह स्वतन्त्र था। इस निष्कर्ष की पुष्टि तिब्बत विषय के अधिकांश जानकार और विधिवेत्ता करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग ने तिब्बत की नैयायिक (वैधिक) स्थिति पर लिखा, "1913 से 1950 तक तिब्बत में राज्य के वे सभी गुण दिखाई पड़ते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा स्वीकृत हैं। 1950 में वहाँ लोग थे, भूखण्ड था, और वहाँ पर सरकार स्थापित थी जो कि बाहरी दखल से रहित प्रशासन चलाती थी। 1913 से 1950 तक तिब्बत के विदेश सम्बन्ध पूरी तरह तिब्बती सरकार द्वारा परिचालित थे और जिन देशों के तिब्बत से सम्बन्ध थे उनसे स्पष्ट है कि वे तिब्बत को स्वतन्त्र राज्य स्वीकार करते थे।" [*Tibet and Chinese People's Republic*, Geneva, 1960, P. 5,6]

चालीस वर्ष की स्वाधीनता किसी राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा राज्य के रूप में स्वीकृति दिलाने के लिए पर्याप्त हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनेक सदस्यों ने इतना ही या इससे भी कम स्वतन्त्रता का समय बिताया है परन्तु तिब्बत के सन्दर्भ में चीनी दुष्प्रचार की मशीन ने तिब्बत के प्राचीन इतिहास तक को तोड़-मरोड़ कर पेश किया है जिससे तिब्बत पर चीन के आधिपत्य को प्रमाणित किया जा सके। इस प्रकार भले ही तिब्बत पर चीन के आधिपत्य के समय तिब्बत की स्थिति स्पष्ट करने के लिए तिब्बत के प्राचीन इतिहास पर विचार आवश्यक नहीं फिर भी इस पर संक्षेप में विचार करना तथ्यों के अंकन के लिए आवश्यक है।

## तिब्बत की स्थिति: 1911-1951

यह बात निर्विवाद है कि 1949 के अन्तिम महीनों में तिब्बत पर चीन के सैनिक आक्रमण के समय तिब्बत में वे सारी विशेषताएं थी जिनके आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय कानून किसी राज्य को मान्यता देता है अर्थात एक निश्चित भूखण्ड, उस भूखण्ड पर बसी जनता और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापन की क्षमता।

तिब्बत देश उस भौगोलिक पठार से बना है जिसका क्षेत्रफल पच्चीस लाख वर्ग किलोमीटर है। इतिहास में विभिन्न समयों पर निश्चित सीमाओं की रक्षा के लिए युद्ध किए जाते रहे हैं।

चीनी आक्रमण के समय तिब्बत की जनसंख्या लगभग 60 लाख थी। जनसंख्या उन तिब्बती लोगों की थी जो अन्य लोगों से भिन्न थे, जिन का लम्बा इतिहास रहा था, समृद्ध संस्कृति और परम्पराएं थी। तिब्बती लोग चीनियों एवं अन्य पड़ोसियों से भिन्न हैं। न केवल तिब्बतियों ने अपने को कभी चीनी नहीं माना बल्कि चीनियों ने भी तिब्बतियों को चीनी नहीं माना। यही कारण है कि चीनी इतिहास में 'जंगली लोगों' का उल्लेख है।

तिब्बत की सरकार का मुख्यालय ल्हासा में था जो तिब्बत की राजधानी थी। इसमें एक राज्याध्यक्ष (दलाई लामा), एक मन्त्री परिषद (काशाग़), एक राष्ट्रीय सभा (छ़ोंगदू) और विस्तृत नौकरशाही थी जो विशाल भूखण्ड का प्रशासन चलाती थी। न्याय व्यवस्था सम्राट सोंगचे़न गाम्पो (7वीं शताब्दी), लामा छांगछुब ग्यालछे़न (14वीं शताब्दी), पांचवें दलाई लामा (17वीं शताब्दी) और तेरहवें दलाई लामा (20वीं शताब्दी) द्वारा विकसित की गई थी और सरकार द्वारा नियुक्त मैजिस्ट्रेट न्याय करते थे।

तिब्बत सरकार कर उगाहती थी, अपने सिक्के ढालती थी, देश की डाक-तार व्यवस्था का संचालन करती थी, टिकट जारी करती थी और तिब्बत की छोटी सी सेना का नेतृत्व उसके हाथ में था और सरकार के अन्य कर्तव्य निभाती थी। यह एक प्राचीन पद्धति की सरकार थी जिसने अतीत में तिब्बत की आवश्यकताओं को समुचित ढंग से पूरा किया था और बदलती राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में तिब्बत को प्रगति पथ पर ले जाने के लिए परिवर्तन की अपेक्षा रखती थी। तिब्बती प्रशासन-व्यवस्था अत्यधिक विकेन्द्रित थी तथा अनेक जिलों एवं रियासतों को बड़ी मात्रा में स्वायत्तता प्राप्त थी। देश की विशालता एवं संचार साधनों के विकसित न होने के कारण ऐसा होना अनिवार्य भी था।

तिब्बत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के केन्द्र में पड़ोसी देश थे। तिब्बत ने इस क्षेत्र के देशों के साथ कूटनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाए। उसके सम्बन्ध नेपाल, भूटान, सिक्किम, मंगोलिया, चीन और ब्रिटिश-भारत से थे और एक सीमा तक जापान और रूस से भी थे।

तिब्बत की विदेश नीति का सबसे पुष्ट प्रमाण संभवत: यह है कि उसने द्वितीय विश्व युद्ध में अपने को तटस्थ रखा। जब जापान ने युद्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण 'बर्मा मार्ग' को अवरूद्ध कर दिया और ब्रिटेन, चीन तथा अमरीका की ओर से तिब्बत पर दबाव पड़ा कि वह चीन में सामान पहुँचाने के लिए अपने यहां से रास्ता दे तो तिब्बत दृढ़तापूर्वक तटस्थ बना रहा और उसने ऐसा नहीं किया। मित्र राष्ट्र तिब्बत की भावना का सम्मान करने के लिए विवश हुए।

चीन आज यह दावा करता है कि किसी देश ने कभी भी तिब्बत को मान्यता प्रदान नहीं की। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अधीन मान्यता या तो सीधे प्रदान की जाती है या फिर व्यवहार द्वारा। सन्धियों पर हस्ताक्षर करना, यहां तक कि सन्धि-वार्ता का होना और निश्चय ही कूटनीतिक सम्बन्धों का होना ऐसे ही व्यवहार हैं जिनसे मान्यता सिद्ध होती है। मंगोलिया और तिब्बत के मध्य 1913 में मान्यता की औपचारिक सन्धि हुई, नेपाल से न केवल तिब्बत की सन्धियां हुई और उसका राजदूत ल्हासा में रहता था बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी सदस्यता के प्रार्थना-पत्र में उसने (नेपाल ने) स्पष्ट किया कि उसके तिब्बत से वैसे ही कूटनीतिक सम्बन्ध हैं जैसे इंग्लैण्ड, अमरीका, भारत, बर्मा तथा अन्य अनेक देशों से।

नेपाल, भूटान, ब्रिटेन, चीन और भारत के कूटनीतिक मिशन ल्हासा में स्थित रहे हैं। भले ही चीन अपने प्रचार में यह दावा करता रहा है कि तिब्बत में उसका मिशन तथाकथित कोमिंतांग सरकार के 'तिब्बती और मंगोलियन मामलों के मिशन' की शाखा मात्र था परन्तु तिब्बत में उसकी मान्यता चीनी कूटनीतिक मिशन के रूप में ही थी। उसका स्थान नेपाली अथवा ब्रिटिश दूतावास से किसी तरह ऊँचा न था। (नेपाल का राजदूत ल्हासा में रहता था जिसे "वकील" कहते थे।)

तिब्बत के अमरीका के साथ भी सीमित राजनयिक सम्बन्ध रहे जबकि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमरीकी राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट ने मित्र राष्ट्रों की सहायता करने के लिए एक दल तिब्बत भेज कर सहयोग की मांग की थी। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ में 1959, 1960, 1961 और 1965 में तिब्बत पर हुए चार वाद-विवादों में अनेक राष्ट्रों ने तिब्बत

को एक प्रभुतासंपन्न स्वतन्त्र राष्ट्र की संज्ञा दी थी जिस पर चीन का अवैध अधिकार था।

## राष्ट्रवादी चीन के साथ सम्बन्ध

1911-49 के दौरान चीन का तिब्बत विषयक पक्ष अस्पष्ट था। एक ओर राष्ट्रवादी चीन सरकार ने एकतरफा घोषणा करते हुए अपने संविधान तथा अन्य घोषणाओं में तिब्बत को अपना एक प्रान्त घोषित कर दिया। (चीन गणतन्त्र की पांच जातियों में से एक) दूसरी ओर तिब्बत सरकार के साथ सरकारी पत्र-व्यवहार में उसने स्वीकार किया कि तिब्बत चीन गणतन्त्र का हिस्सा नहीं है। इस प्रकार चीनी राष्ट्रपति ने दलाई लामा और तिब्बत सरकार को पत्र और सन्देशवाहक भेज कर निरन्तर यह आग्रह किया कि तिब्बत चीन गणतन्त्र का भाग बन जाए। इसी प्रकार के सन्देश चीन द्वारा नेपाल की सरकार को भी भेजे गए। नेपाल और तिब्बत ने निरन्तर चीन में विलय का विरोध किया।

चीनी राष्ट्रपति युआन शिकाई के पहले पत्र के उत्तर में तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत के चीन में मिलाए जाने की प्रार्थना को विनम्रतापूर्वक परन्तु दृढ़ता से निरस्त कर दिया और लिखा कि वे इसका 'समर्थन' इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि अतीत में चीन ने तिब्बत से बहुत अन्याय किया है, उन्होंने लिखा- "चीनी गणतन्त्र की स्थापना अभी-अभी हुई है और इसकी राष्ट्रीय नींव अभी कमजोर है। राष्ट्रपति के लिए यह उचित होगा कि वह शान्ति व्यवस्था स्थापित करने में लगें। जहां तक तिब्बत का प्रश्न है वह अपने अस्तित्व की रक्षा में पूरी तरह समर्थ है और राष्ट्रपति को इतनी दूर बैठकर इस विषय में चिन्तित अथवा परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।" [*Guomin Gongbao*, January 6, 1913]

चीनी श्वेत-पत्र में तेरहवें दलाई लामा के हवाले से यह कहा गया है कि उन्होंने 1919 में भेजे चीनी दूत से कहा था, "मेरी वास्तविक इच्छा अंग्रेजों के साथ गहरी मैत्री स्थापित करने की नहीं है।...... मैं अपने देश के प्रति वफादार रहने की शपथ लेता हूँ और पांचों जातियों की खुशियों के लिए कार्य करूँगा।"

इसी वर्ष एक गैर सरकारी चीनी दल प्रकट रूप में दलाई लामा के प्रति धार्मिक श्रद्धा व्यक्त करने के लिए ल्हासा पहुँचा परन्तु उसका वास्तविक लक्ष्य चीन के साथ समझौता करवाना था। परन्तु दलाई लामा ने इस प्रस्ताव को स्पष्ट रूप से ठुकरा दिया और तिब्बत में त्रिपक्षीय वार्ता का निमन्त्रण दिया।

ल्यू मांछिंग नामक एक महिला जो कि मिश्रित तिब्बती और चीनी मूल की थी 1930 में इस सन्दर्भ में ल्हासा आई। उसकी यात्रा को व्यक्तिगत कहा गया। परन्तु फिर भी उसने अपनी तथाकथित व्यक्तिगत यात्रा के दौरान चीनी राष्ट्रपति का एक पत्र तिब्बत सरकार तक पहुँचाना चाहा। तिब्बत सरकार ने उसे प्रोत्साहन नहीं दिया।

चीन के श्वेतपत्र में यह कहा गया है कि तेरहवें दलाई लामा ने इस महिला के माध्यम से भेजे संदेश में यह विश्वास व्यक्त किया था कि तिब्बत चीन का ही हिस्सा है। दलाई लामा की ओर से यह कथन उद्धृत किया गया है, ''मेरी सबसे बड़ी इच्छा वास्तविक शान्ति और चीन के साथ विलय की है।'' दलाई लामा ने इस प्रकार की कोई घोषणा 1930 में की थी यह सिद्ध करने वाला कोई ऐतिहासिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। इसके विपरीत दलाई लामा का सरकारी अभिलेखागार इस बात का खण्डन करता है। अभिलेखों में दलाई लामा को भेजे आठ प्रश्न अंकित हैं जिनके उत्तर भी दलाई लामा ने दिए थे।

चीन और तिब्बत के आपसी सम्बन्धों और चीन के तिब्बत में प्रभाव को लेकर दलाई लामा ने कहा, ''तिब्बत की धार्मिक-राजनैतिक व्यवस्था के स्थायित्व के लिए तथा तिब्बती जनता की खुशी के लिए, यही ठीक होगा कि हम वार्तालाप करें और सन्धियां करें जिससे कि विश्वसनीय सम्बन्ध स्थापित हो सकें।''

तिब्बत की स्वतन्त्रता और उसके सीमान्त क्षेत्रों के विषय में तिब्बत चीन से क्षेत्र वापिस चाहता था, दलाई लामा ने कहा, ''अब तक तिब्बत और चीन के साथ जो जजमान-पुरोहित सम्बन्ध रहे हैं उनके कारण तिब्बत को पर्याप्त स्वतन्त्रता रही है। हम इसे बनाए रखना चाहते हैं। हम यह सोचते हैं कि बाहरी लोगों ने तिब्बत के जो क्षेत्र हथिया लिए हैं वे उन्हें लौटा दिए जाएं तो स्थाई शान्ति हो सकती है।''

*[Record of the Thirteenth Dalai Lama's*

*communication,* dated 15th day of the 4th Tibetan Month, Iron Horse Year, 1930]

अन्य चीनी राजदूतों जनरल हुआंग मुसुंग (1934) और वू झोंगशिन (1940) आदि को भी स्पष्ट शब्दों में बता दिया गया कि तिब्बत स्वतन्त्र रहा है और बना रहना चाहता है। यहां यह भी कह देना उचित होगा कि न तो चीन सरकार और न ही चीन के ''विशिष्ट दूत'' का 'रेटिंग रिन्पोछे' को 1933 में तेरहवें दलाई लामा की मृत्यु के पश्चात् प्रतिशासक नियुक्त करने में कोई हाथ था।

हुआंग मुसुंग पहला चीनी था जिसे 1911 के पश्चात् सरकारी अधिकारी के रूप में तिब्बत में प्रवेश का अधिकार दिया गया। तिब्बत सरकार ने उसे प्रवेश करने से नहीं रोका क्योंकि उसने अपनी यात्रा का उद्देश्य तेरहवें दलाई लामा की मृत्यु पर शोक व्यक्त करना और श्रद्धा सुमन अर्पित करना बताया था जो कि ऐसा कार्य था जिसके लिए तिब्बत सरकार ने शायद ही कभी किसी को रोका हो।

रेटिंग रिंपोछे के प्रतिशासक नियुक्त किए जाने के तीन मास पश्चात् अप्रैल 1934 में हुआंग मुसुंग ल्हासा पहुँचा था। छोंग्दू (राष्ट्रीय सभा) ने प्रतिशासक के रूप में तीन व्यक्तियों के नाम प्रस्तावित किए थे- रेटिंग रिन्पोछे, गादेन ठीपायेशी वांग्देन और फुरछोक रिन्पोछे। इनमें से रेटिंग रिंपोछे का चुनाव अविलोकतेश्वर की प्रतिमा के सम्मुख पोताला में आटे के पेड़े घुमा कर एक विशेष समारोह में किया गया था। [Thupten Tenthar Lawutara in *Bhod ki Lo-rGyud Rig-gNes dPyed gShe rGyu-cha bDams BsGrigs,* Vol 12, People's Publishing House, Beijing, 1990]

श्वेत पत्र में यह दावा किया गया है कि तिब्बत सरकार ने अपने अधिकारी चीनी राष्ट्रीय सभा के अधिवेशनों में भाग लेने के लिए 1931 और 1946 में नानजिंग भेजे थे।

वास्तव में 1931 में खेम्पो कुन्चोक जुंगने को दलाई लामा द्वारा अस्थाई सम्पर्क कार्यालय स्थापित करने के लिए नान्जिंग भेजा गया था जिससे चीन सरकार से सम्बन्ध स्थापित हो सकें। इसी प्रकार 1946 में दिल्ली और

नान्जिंग में तिब्बती दल भेजकर ब्रिटेन, अमरीका और चीन को द्वितीय विश्व युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय पर बधाई दी गई थी। उन्हें चीन की राष्ट्रीय सभा में उपस्थित रहने का कोई निर्देश या अधिकार नहीं दिया गया था। इस विषय में 'अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग' की 'कानूनी खोज समिति' के सम्मुख 29 अगस्त, 1959 को चौदहवें दलाई लामा ने कहा था, "उन्हें (तिब्बती प्रतिनिधिमण्डल को) राष्ट्रीय सभा में भाग लेने के लिए अधिकृत नहीं किया गया था। जब चीनी प्रचार तिब्बत सरकार के सामने आया तो प्रतिनिधि मण्डल को भाग लेने से रोक दिया गया।"

जहां तक कोमिंतांग सरकार द्वारा तिब्बती और मंगोलियन मामलों की देख-रेख के लिए कमीशन स्थापित करने का प्रश्न है यह भी भ्रामक प्रचार का हिस्सा ही है क्योंकि ताईवान की कोमिंतांग सरकार आज भी यह मानती है कि इस कमीशन का अधिकार क्षेत्र सम्पूर्ण तिब्बत और सम्पूर्ण मंगोलिया (भीतरी एवं बाहरी मंगोलिया) तक फैला है जबकि 1924 से बाह्य मंगोलिया को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में मान्यता मिली हुई है। वास्तव में तिब्बत ने कभी भी इस कमीशन को स्वीकृति नहीं दी और तिब्बत में इसका कोई अधिकार क्षेत्र नहीं रहा।

## 'संयुक्त राष्ट्र संघ' में चर्चाएं

जब 1949 में चीनी सेना तिब्बत में प्रवेश करने लगी तब तिब्बत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ को चीनी आक्रमण के विरुद्ध तुरन्त सहायता के लिए प्रार्थना भेजी। भारत और ब्रिटेन द्वारा जनरल असेम्बली को तत्काल कुछ न करने की प्रार्थना की गई क्योंकि ऐसा होने पर चीन तिब्बत पर खुला आक्रमण कर सकता था। परन्तु अनेक राष्ट्रों की नजर में चीन का तिब्बत में हस्तक्षेप सीधा आक्रमण ही था। यह बात 1959, 1960, 1961 और 1965 में जनरल असेम्बली में हुई बहसों में और भी स्पष्ट हो गई जब अनेक सरकारों की भावनाओं को स्वर देते हुए फिलिपींस के प्रतिनिधि ने तिब्बत को स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित किया और कहा "यह स्पष्ट है कि 1950 में चीनी आक्रमण के समय तिब्बत विदेशी शासन के अधीन नहीं था।" उसने चीन द्वारा तिब्बत पर आधिपत्य को "निकृष्टतम

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का उदाहरण कहा जो कि अतीत या वर्तमान में अपनी तुलना नहीं रखता''। निकारगुआ के प्रतिनिधि ने चीनी आक्रमण की भर्त्सना करते हुए कहा, ''स्वतन्त्र राष्ट्र में जन्मे अमरीकी स्वभावत: आक्रमण से घृणा करते हैं और विशेषकर ऐसा आक्रमण जो एक बड़े राष्ट्र द्वारा छोटे और कमजोर राष्ट्र पर किया गया हो।'' थाईलैंड के प्रतिनिधि ने असेम्बली को याद दिलाया कि अधिकांश सदस्य-राष्ट्र चीन के इस मत से सहमत नहीं हैं कि तिब्बत चीन का हिस्सा है।'' इसी प्रकार अमरीकी सरकार ने भी चीनी आक्रमण और आधिपत्य की निन्दा और भर्त्सना की।

आयरलैंड के प्रतिनिधि फ्रेंक आइकन ने कहा, ''चार हजार वर्ष तक या फिर कम से कम दो हजार वर्ष तक तिब्बत उतना ही आजाद और प्रभुता सम्पन्न था जितना कि इस असेम्बली का कोई भी सदस्य राष्ट्र हो सकता है, यहां तक कि यहां उपस्थित अनेक राष्ट्रों की अपेक्षा अपने मामलों की देख-रेख में हजार गुना स्वतन्त्र था।'' [UN GA Docs A/PV 898, 1960; A/PV 1394, 1401, 1965]

वास्तव में इस मसले पर केवल साम्यवादी गुट ने ही खुलकर चीन का साथ दिया। इन चर्चाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि चीन का यह कथन कि किसी राष्ट्र ने तिब्बत की स्वतन्त्रता को मान्यता नहीं दी और किसी ने चीन को आक्रान्ता नहीं माना, झूठ सिद्ध हो जाता है।

## निष्कर्ष

इतिहास का अंग भंग किए बिना चीन सरकार इस तथ्य को नहीं झुठला सकती कि 1911 से 1951 तक तिब्बत पूर्णतया स्वतन्त्र राष्ट्र था। यहां तक कि ल्हासा में चीन के अन्तिम राजदूत शेन चुंग ली-एन ने 1948 में ल्हासा छोड़ने पर कहा, ''1911 से ल्हासा (ल्हासा स्थित तिब्बत सरकार) व्यावहारिक दृष्टि से पूरी तरह स्वतन्त्र रहा है।'' [*Tibet and Tibetans,* Shen, T. and Liu, S., New York, 1973, P-62] माओ चे़ तुंग अपने 'लाँग मार्च' के दौरान जब तिब्बत के सीमा प्रान्त से गुजरा और स्थानीय तिब्बतियों द्वारा उसे आश्रय और रसद दिया गया तो उसने कहा था, ''हमारे ऊपर एक

मात्र यही विदेशी ऋण है और कभी न कभी मांचू और तिब्बतियों द्वारा दी गई रसद का मूल्य हमें अवश्य चुकाना है जिसे लेने के लिए हम विवश हुए हैं।" [*Red Star over China,* Edgar Snow, New York, 1961, P-214. Emphasis added, ed.]

## दलाई लामा और पंचेन लामा की सम्मानार्थ उपाधियों का उद्भव और स्थान

चीन के श्वेत-पत्र में लिखा है, "1653 और 1713 में चिंग (Qing) सम्राटों ने पांचवें दलाई लामा और पांचवें पंचेन लामा को सम्मानार्थ ये पद दिए जिसके द्वारा तिब्बत में उनके राजनैतिक और धार्मिक स्थान को आने वाले समय के लिए निश्चित कर दिया। दलाई लामा ल्हासा से अधिकांश तिब्बत पर राज करते थे जबकि शेष तिब्बत पर पंचेन लामा शिगाचे़ से राज्य करते थे।" चीन का यह दावा पूरी तरह निराधार है।

तिब्बत के धार्मिक विद्वान और महात्मा चो़ंखापा (1357-1419) ने तिब्बती बौद्ध धर्म की गेलुग शाखा का श्रीगणेश किया था। यह तिब्बती बौद्ध-धर्म का चौथा प्रमुख सम्प्रदाय बना, पहले तीन थे,-ञींगमा, साक्या एवं कर्ग्युद। पंचेन गेदूँ द्रुप चो़ंखापा का प्रमुख शिष्य था। पंचेन गेदूँ द्रुप के तीसरे अवतार सोनम ग्याछो़ को मंगोल सम्राट अल्तान खान के दरबार में निमन्त्रित किया गया था और पहली बार उन्हें 'दलाई लामा' की उपाधि प्रदान की गई थी। यह उपाधि उसके पहले के दो अवतारों को भी मरणोपरान्त दी गई और इस प्रकार वे तीसरे दलाई लामा कहलाए गए। इस प्रकार दलाई लामाओं की परम्परा प्रारम्भ हुई। इस प्रकार चीनी प्रचार तन्त्र का यह कथन सत्य नहीं है कि चीन के मांचू सम्राटों ने इस घटना की एक शताब्दी पश्चात् दलाई लामा की पदवी का सृजन किया था।

अल्तान खान और तीसरे दलाई लामा के बीच सम्बन्ध धार्मिक प्रकृति का था परन्तु दो शताब्दियों पश्चात् इसके राजनैतिक परिणाम भी सामने आए जबकि मंगोल शासक गुशरी खान ने पांचवें दलाई लामा (1617-82) को तिब्बत का उच्चतम राजनैतिक तथा आध्यात्मिक शासक बनने में सहायता की।

दलाई लामा ने इसके बदले अपने मंगोल संरक्षक को 'छ्योकी ग्यालपो' अर्थात धर्म राजा की उपाधि से विभूषित किया। इस समय के पश्चात् दलाई लामाओं ने प्रभुता संपन्न राजाओं के रूप में तिब्बत पर शासन किया। इस प्रकार चीनी श्वेत-पत्र में उल्लिखित दलाई लामा की राजनीतिक स्थिति चिंग वंशीय मांचू सम्राटों की देन नहीं थी बल्कि चिंग वंश के स्थापन से दो वर्ष पूर्व पंचम दलाई लामा और उसके मंगोल संरक्षकों की देन थी।

टाशी ल्हुन्पो बौद्ध विहार की स्थापना 1447 में पंचेन गेदूँ द्रुप द्वारा की गई थी जो कि कालान्तर में प्रथम दलाई लामा कहलाए। टाशी ल्हुन्पो बौद्ध विहार के धर्मगुरुओं को उनकी विद्वत्ता के कारण पंचेन लामा की उपाधि दी गई। पांचवें दलाई लामा ने अपने अध्यापक पंचेन लोबसांग छ्योकी ग्यालचे़न (1570-1662) को टाशी ल्हुन्पो विहार का धर्मगुरू नियुक्त किया और कुछ और भूमि भी प्रदान की। इसके पश्चात् पंचेन लामाओं का चुनाव पुनर्जन्म के आधार पर होता रहा और आगे आने वाले प्रत्येक पंचेन लामा को विहार और भूमि का स्वामी माना गया। यह स्थिति पुनर्जन्म से निर्धारित होने वाले अन्य लामाओं साक्या, फाग्पा-ला, डकयाब लोदेन शेरब आदि की भी थी जिन्हें तिब्बत सरकार ने भू-अधिकार दिए थे। परन्तु इसका कोई भी राजनैतिक महत्त्व नहीं था।

चीन के साम्यवादी प्रचार के विपरीत पंचेन लामा और अन्य लामाओं के पास मात्र धार्मिक सत्ता थी और उन्हें तिब्बत के किसी भाग पर राजनैतिक सत्ता प्राप्त नहीं थी। वास्तव में शिगाचे़ और टाशी ल्हुन्पो का प्रशासन ल्हासा द्वारा नियुक्त जिला प्रशासक (गवर्नर) के अधीन था।

इस प्रकार मांचू सम्राट ने दलाई लामा अथवा पंचेन लामा के राजनैतिक तथा धार्मिक स्थान को निर्धारित करने में कभी कोई भूमिका नहीं निभाई।

चीन द्वारा तिब्बत पर आक्रमण के पश्चात् चीन सरकार ने पंचेन लामा के माध्यम से तिब्बत पर अपने अधिकार को वैध ठहराने के लिए अनेक बार प्रयास किया। बीजिंग ने उसे राजनैतिक उच्च पदों पर नियुक्त किया और उसे अनेक अवसरों पर दलाई लामा की निन्दा करने तथा उसके स्थान पर अपने को स्थापित करने के लिए प्रेरित किया परन्तु पंचेन लामा ने ऐसा करने से

इन्कार किया जिसके परिणाम स्वरूप चीनियों के हाथों अनेक अत्याचार सहे और कारावास की पीड़ा भोगी।

श्वेत पत्र में चीन सरकार कोमिंतांग सरकार की तरह यह दावा करती है कि 1940 में उनके राजदूत वू झोंगशिन ने चौदहवें दलाई लामा को सत्तासीन करने में निर्णायक भूमिका निभाई थी। और उसमें लिखा, ''यह सीधा-सादा यथार्थ कि चौदहवें दलाई लामा को सत्तासीन होने के लिए चीन सरकार की स्वीकृति लेने की आवश्यकता थी सिद्ध करता है कि 1911 से 1949 के बीच तिब्बत स्वतन्त्र राज्य नहीं था।''

वास्तव में दलाई लामा का चुनाव सदियों पुरानी धार्मिक परम्पराओं और विश्वासों के आधार पर किया गया था और उन्हें चीन सरकार की अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं थी और न ही कोई अनुमति मांगी गई थी। वू के ल्हासा आगमन से एक वर्ष पूर्व प्रतिशासक रेटिंग ने 1939 में ही वर्तमान दलाई लामा के नाम की घोषणा ''राष्ट्रीय सभा'' में कर दी थी। इस सभा ने सर्वसम्मति से इसका अनुमोदन किया था।

22 फरवरी 1940 को जब दलाई लामा का राज्याभिषेक हुआ तब भूटान, सिक्किम, नेपाल और ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की तरह चीनी प्रतिनिधि वू की भी कोई विशेष भूमिका न थी। सर बासिल गोल्ड जो कि ब्रिटेन के राजनीतिक प्रतिनिधि थे ने कहा है कि घटनाओं का जो वृत्तान्त चीनियों द्वारा प्रचारित किया गया है वह दलाई लामा के सिंहासन पर बैठने से पहले गढ़ा गया था। वू झोंगशिन का वृत्तान्त, जिस पर चीनी तर्क आश्रित हैं कपोल कल्पित है और उसकी इस इच्छा का सूचक हैं कि ऐसा होना चाहिए था परन्तु वास्तव में ऐसा हुआ नहीं।

चीनी प्रचार-तन्त्र एक ऐसी प्रकाशित खबर को भी आधार बनाता है जिसमें दलाई लामा और वू झोंगशिन का इकट्ठा चित्र प्रकाशित है और कहा जाता है कि वह चित्र सिंहासनारोहण के समय का है। परन्तु चीन के राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकारी समिति के उपप्रधान श्री डाबो डवांग जिग्मे के अनुसार यह चित्र कुछ दिन पश्चात् का है जबकि वू दलाई लामा से व्यक्तिगत रूप से भेंट करने आया था। डाबो ने 31 अगस्त, 1989 को तिब्बती समाचार पत्र

'टिबेट डेली' में लिखा, "इस चित्र के आधार पर वू का यह दावा कि उसने सिंहासनारोहण समारोह की अध्यक्षता की थी, ऐतिहासिक तथ्यों की नग्न तोड़-मरोड़ है।"

## प्राचीन इतिहास

तिब्बत की ऐतिहासिक परम्परा में प्रसिद्ध है कि तिब्बत का प्रथम शासक 127 ई० पू० में हुआ परन्तु एक संगठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में तिब्बत का उदय 7वीं शताब्दी के तिब्बती शासक सोंगचे़न गाम्पो के समय में हुआ। उसके शासन से सैनिक वर्चस्व और भौगोलिक विस्तार का ऐसा युग प्रारम्भ हुआ जो कि तीन सौ वर्ष तक चला। नेपाल के राजा और चीन के सम्राट ने अपनी लड़कियों की शादियाँ इस शासक से की।

नेपाली और चीनी शासकों की पुत्रियों से शादी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन राजकुमारियों ने तिब्बत में बौद्ध-धर्म के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चीनी प्रचार तन्त्र सोंगचे़न गाम्पो की चीनी शाही परिवार की राजकुमारी से शादी के महत्त्व को बढ़ा चढ़ा कर पेश करते हैं और जानबूझ कर उसकी अन्य पत्नियों के महत्त्व को विशेषकर नेपाली राजकुमारी के महत्त्व को भुला देते हैं जिसका प्रभाव चीन की राजकुमारी के प्रभाव से अधिक ही था।

तिब्बती शासक ठिसोंग देचे़न (755-797) ने तिब्बती साम्राज्य को फैलाया और चीन के कुछ भागों को जीता। 763 में चीन की प्राचीन राजधानी छंगाँन, आधुनिक शियान (Xian) पर आक्रमण किया और उसके शासकों को तिब्बत को वार्षिक कर देने के लिए विवश किया। 783 में तिब्बत और चीन की सीमाओं को निर्धारित करने वाली सन्धि हुई। ल्हासा में पोताला महल के निकट स्थित एक प्रस्तर-स्तम्भ इन विजयों की गवाही देता है।

चीन और तिब्बत के बीच 821 में हुई शान्ति सन्धि एशिया की इन दो बड़ी शक्तियों के आपसी सम्बन्धों पर प्रकाश डालती है। इस सन्धि का मूल आलेख तीन प्रस्तर सतम्भों पर खुदा है: एक गुंगू मेरू में चीन तथा तिब्बत की सीमा निर्धारित करने के लिए स्थापित किया गया। दूसरा ल्हासा में स्थापित

किया गया जहां वह आज भी विद्यमान है और तीसरा चीन की राजधानी छंगाँन में। श्वेत-पत्र में इन शिलालेखों से उद्धृत प्रसंग सन्दर्भों से काटकर एवं अशुद्ध रूप में उद्धृत किए गए हैं जिनसे ऐसा प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयास किया गया मानो दोनों राज्य एक यूनियन का हिस्सा बन गए हों। उस सन्धि के मुख्य-अंश के निम्न अंश के उद्धरण से सिद्ध होता है कि ऐसा कहना सत्य से कहीं दूर है, ''चीन और तिब्बत अपने अधीन सीमाओं में रहेंगे। पूरे पूर्व में महान चीनी साम्राज्य है और धुर पश्चिम तक निर्विवाद रूप से तिब्बती साम्राज्य है। आज के पश्चात् कोई पक्ष एक दूसरे की धरती पर आक्रमण भी नहीं करेगा और उसे हथियाएगा भी नहीं।''

यह समझना अत्यधिक कठिन है कि किस प्रकार चीन ने अपने श्वेत-पत्र में इन घटनाओं की व्याख्या इस रूप में की कि, ''तिब्बती और हॉन (चीनी) शासक ने शाही वंशों में शादियों और मेल-मिलाप जन्य समझौतों से दोनों देशों के बीच राजनैतिक और पारिवारिक सम्बन्धों को दृढ़ किया था और निकट आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों का निर्माण किया था जिसके परिणाम स्वरूप अन्ततः दोनों के संयुक्त राज्य की नींव पड़ी।'' वास्तव में तिब्बती और चीनी दस्तावेज ऐसी व्याख्या का खण्डन करते हैं और दो सशक्त साम्राज्यों के अलग-अलग अस्तित्व को पुष्ट करते हैं।

नौवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बती साम्राज्य छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। तिब्बत का ध्यान अधिकतर नेपाल और भारत पर रहा जहां से शक्तिशाली धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव आया जिससे तिब्बत में बौद्धिक नवजागरण हुआ।

## मंगोल शासकों से सम्बन्धः ( 1240-1350 )

मंगोल शासक चंगेज खान और उसके वंशजों ने एशिया और युरोप के अनेक भागों को जीत कर विश्व के विशालतम साम्राज्य की स्थापना की जो कि प्रशान्त महासागर से लेकर पूर्वी युरोप तक फैला था। 1207 में तांगुत साम्राज्य जो तिब्बत के उत्तर में था मंगोलों के अधीन हो गया, 1271 में मंगोलों ने अपने पूर्वी भाग के साम्राज्य का प्रशासन मंगोल युआन वंश को

सौंप दिया। 1279 में चीन के सुंग वंश को मंगोलों ने पराजित किया और पूरे चीन पर उनका अधिकार हो गया। आज चीन युआन वंश को अपना कहकर उसके द्वारा विजित क्षेत्रों को अपने राज्य का अंग मानता है, कम से कम मंगोलों के पूर्वी साम्राज्य के आधे भाग को तो अपना मानता ही है।

चंगेज खान के पौत्र राजकुमार गोदेन ने 1240 में एक दल तिब्बत भेजा और तिब्बती धर्माचार्यों में एक उच्च पदस्थ साक्या पण्डित कुंगा ग्यालचे़न (1182-1251) को अपने दरबार में आमन्त्रित किया और इस प्रकार मंगोल-तिब्बत स्थाई सम्बन्धों की आधारशिला रखी। यहीं से प्रसिद्ध छो-यॉन अर्थात जजमान-पुरोहित सम्बन्धों का प्रारम्भ हुआ। गोदेन खान के पश्चात् कुबलाई खान गद्दी पर बैठा और उसने बौद्ध धर्म को अपनाया तथा डोगोन छोग्याल फाग्पा को अपना आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक स्वीकार किया जो कि साक्या-पण्डित का भतीजा था।

इस छो-यॉन (जजमान-पुरोहित) सम्बन्ध के परिणाम स्वरूप कुबलाई खान ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाया और फाग्पा इसके उच्चतम आध्यात्मिक अधिकारी बने। कृतज्ञता ज्ञापन के लिए कुबलाई खान ने 1254 में तिब्बती लामा को तिब्बत पर पूर्ण शासकीय अधिकार दे दिए और उसे अनेक उपाधियों से मण्डित किया।

इन प्रारम्भिक छो-यॉन सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप मंगोल राजकुमारों और तिब्बती राजपरिवारों तथा लामाओं के पारस्परिक सम्बन्ध विकसित हुए। इन अद्वितीय मध्य एशियाई सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप आगे चल कर मांचू शासकों और दलाई लामाओं के सम्बन्धों की नींव पड़ी। यह छो-यॉन सम्बन्ध पूर्णतया वैयक्तिक होते थे तथा इनका आधार जजमान की पुरोहित के प्रति धार्मिक श्रद्धा होती थी और ये सम्बन्ध जजमान की राजनीतिक स्थिति बदल जाने पर भी बने रहते थे। यह बात मंगोल तिब्बत सम्बन्धों से और भी स्पष्ट हो जाती है क्योंकि युआन वंश के पतन के पश्चात् भी ये सम्बन्ध बने रहे।

छो-यॉन सम्बन्धों का महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि मंगोल संरक्षक अपने पुरोहित तिब्बती लामाओं को किसी स्वामी भक्ति के कारण नहीं बल्कि उनके द्वारा दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा और आशीर्वादों के कारण संरक्षण

प्रदान करते थे। कुछ छो-यॉन सम्बन्धों का राजनैतिक पक्ष भी विकसित हुआ क्योंकि जजमान मंगोलों का यह दायित्व बन गया कि वे अपने पुरोहित लामाओं और उनके धर्म (चर्च) की रक्षा करें। संरक्षक की श्रेष्ठता स्वीकृत नहीं थी क्योंकि संरक्षक या जजमान पुरोहित का शिष्य और भक्त होता था इस लिए चीनी प्रचार जो संरक्षक की श्रेष्ठता सिद्ध करता है भ्रामक है।

जब मंगोलों के पूर्वी साम्राज्य में बौद्ध-धर्म राज-धर्म बन गया और साक्या लामा (फागपा) सर्वोच्च धर्माधिकारी बन गया तो तिब्बत-मंगोल सम्बन्ध अधीनता के नहीं पारस्परिक निर्भरता के बन गए। इस अवधारणा के अनुसार सांसारिक सम्राट एवं धार्मिक नेता की अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वोच्च सत्ता समानता और समाश्रय के आधार पर स्थापित हुई। जबकि धार्मिक नेता को मंगोल शासक के संरक्षण एवं तिब्बती-शासन चलाने में सहायता की आवश्यकता थी तभी विजेत मंगोल शासकों को अपने मंगोल साम्राज्य की वैधता सिद्ध करने के लिए लामा की आवश्यकता थी।

यह अकाट्य सत्य है कि मंगोल शासकों ने तिब्बत पर अपना प्रभाव बढ़ाया परन्तु चीनी श्वेत-पत्र के इस दावे में सच्चाई नहीं कि, ''तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग में तिब्बत सरकारी तौर पर चीनी युआन वंश के साम्राज्य का हिस्सा बन गया था'' क्योंकि किसी मंगोल शासक ने तिब्बत पर सीधे शासन करने का प्रयास नहीं किया। तिब्बत कभी भी मंगोलों का करदाता राज्य नहीं रहा और मंगोलों ने उसे कभी चीन का अंग नहीं माना।

1350 में तिब्बत ने मंगोलों से अपने राजनैतिक सम्बन्ध तोड़ लिए जबकि छांगचुब ग्यालचे़न (1350-1364) तिब्बत का सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट बना और साक्या लामाओं को उसने अपदस्थ किया। छांगचुब ने तिब्बती प्रशासन में मंगोल प्रभाव को समाप्त कर पूर्णतया तिब्बती प्रशासन व्यवस्था स्थापित की। उसने एक 'कानून संहिता' भी जारी की (*Trimyig. Shelchey Chonga*, 15-Article Code) जिससे राज्य में न्याय-व्यवस्था कायम हो सके। इसके अठारह वर्ष पश्चात् चीनियों को मंगोलों से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और वहां मिंग वंश की स्थापना हुई।

## चीनी सम्राटों के साथ सम्बन्ध ( 1368-1644 )

श्वेत पत्र दावा करता है कि चीनी मिंग वंश ने "चीन के युआन वंश को अपदस्थ कर तिब्बत पर राज्य करने का अधिकार प्राप्त किया।" परन्तु इस दावे का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि मंगोल खानों अथवा सम्राटों के साथ तिब्बती लामाओं के सम्बन्ध, मंगोलों की चीन-विजय से भी पुराने हैं। इसी प्रकार तिब्बतियों ने मंगोल शासकों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद चीन की मंगोलों से आज़ादी से पूर्व कर लिया था। चीनी मिंग वंश को मंगोलों से कोई सम्बन्ध विरासत में नहीं मिले। दूसरी ओर राजनैतिक सम्बन्ध टूटने पर भी सदियों तक मंगोल शासकों ने तिब्बती लामाओं से अपने छो-यॉन सम्बन्ध धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर बनाए रखे।

यदि यह भी मान लिया जाए कि मंगोलों का तिब्बत पर प्रभुत्व रहा तो भी यह स्वीकार करना काल्पनिक है कि चीन को मंगोलों से विरासत में तिब्बत पर राज करने का अधिकार मिला क्योंकि मंगोल साम्राज्य का वैध उत्तराधिकारी स्वतन्त्र बाह्य मंगोलिया आज भी एक राष्ट्र के रूप में विद्यमान है।

तिब्बत और चीन के मिंग वंश के सम्बन्ध व्यक्तिगत एवं ऐच्छिक थे तथा तिब्बत के विभिन्न बौद्ध विहारों के लामाओं द्वारा जो कभी-कभी परस्पर विरोधी भी होते थे, चीन की यात्रा तक सीमित थे। चीनी शासक उन्हें सम्मानजनक उपाधियां अथवा भेंट देते रहते थे। इन यात्राओं का वर्णन तिब्बत के 15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी के इतिहास में अंकित है परन्तु इन से कहीं यह पता नहीं चलता कि तिब्बत चीन के अधीन था अथवा मिंग वंश के शासकों के अधीन था। चीन के श्वेत-पत्र में यह दावा किया गया है कि तिब्बती लामाओं के साथ मिंग शासकों के ये व्यक्तिगत सम्बन्ध तिब्बत पर और तिब्बत में चीन के अधिकार के सूचक हैं। क्योंकि इनमें से कोई भी लामा तिब्बत का शासक नहीं था इसलिए इनके सम्बन्ध चीनी शासकों से जैसे भी रहे हों उनसे तिब्बत के स्वतन्त्र अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

1350 से तिब्बत पर फ़ागमोडु के राजकुमारों का अधिकार था और उसके पश्चात् 1481 से रिम्पुंग वंश का शासन हुआ। 1406 में तिब्बत के

शासक फ़ागमोड्रु राजकुमार ढगपा ग्यालचे़न ने चीन आने के शाही निमन्त्रण को ठुकरा दिया। इससे तिब्बती शासकों की प्रभुसत्ता स्पष्ट लक्षित होती है। 1565 से लेकर पांचवें दलाई लामा के 1642 में सत्ता में आने तक (या मिंग साम्राज्य के पतन के दो वर्ष पूर्व तक) च़ांग के शासक तिब्बत पर शासन करते रहे। इन शासकों के साथ मिंग सम्राटों के इक्का-दुक्का सम्बन्धों के संकेत मिलते हैं परन्तु यह स्पष्ट है कि चीनी मिंग शासकों का इन पर न कोई अधिकार था और न ही प्रभाव।

1644 में विदेशी विजेताओं ने चीनी शासकों को एक बार फिर अपदस्थ कर दिया। मांचू राजवंश की स्थापना में सफल हुए और एक विशाल साम्राज्य पर राज करने लगे जिसका सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा चीन था। उन्होंने इसे चिंग वंश का नाम दिया।

## मांचू शासकों से सम्बन्ध ( 1639-1911 )

1642 में अपने मंगोल संरक्षक गुशरी खान की सहायता से महान पांचवें दलाई लामा एकीकृत तिब्बत के शासक बने। तब से तिब्बती उसे अपना ''गोंगसा छेम्पो'' (सर्वोच्चशासक) मानते हैं। उनका सम्मान तिब्बत की सीमाओं से परे दूर-दूर तक था। पांचवें दलाई लामा ने न केवल मंगोलों से निकट सम्बन्ध रखे बल्कि मांचू शासकों से निकट सम्बन्ध स्थापित किए।

1639 में जबकि दलाई लामा अभी सर्वोच्च राजनैतिक सत्ता नहीं बने थे और चीन भी अभी मांचू शासकों के अधीन अथवा चिंग वंश के अधीन नहीं हुआ था उस समय मांचू शासक ताई चुंग ने दलाई लामा को अपनी राजधानी मुकदेन (जो कि वर्तमान शेनयांग है) में निमन्त्रित किया था। दलाई लामा स्वयं निमन्त्रण स्वीकार करने में असमर्थ थे इसलिए उन्होंने अपना प्रतिनिधि वहां भेजा जिसका समुचित स्वागत किया गया। इस प्रकार मांचू शासकों और तिब्बती दलाई लामा में छो-यॉन (यजमान-पुरोहित) सम्बन्ध स्थापित हो गया।

जिस प्रकार तिब्बत के मंगोलों के साथ सम्बन्धों में चीन का दखल नहीं था वैसे ही मांचू शासकों के साथ सम्बन्धों में भी चीन कहीं नहीं आता। जैसा कि ओवेन लेटीमोर ने चिंग वंश के सन्दर्भ में संकेत किया है कि, ''वास्तव में

मांचू साम्राज्य का ही अस्तित्व था और चीन उसका एक हिस्सा मात्र था।" [*Studies in Frontier History*]

सम्राट शुंजी ने चीन को विजय कर मांचू साम्राज्य का हिस्सा बना लिया और उसके पश्चात् पांचवें दलाई लामा को 1653 में शाही राजधानी में पधारने के लिए सरकारी तौर पर निमन्त्रित किया। मध्य एशिया के सर्वोच्च बौद्ध धर्म गुरु एवं आध्यात्मिक नेता तिब्बत के दलाई लामा के प्रति अद्वितीय सम्मान प्रकट करते हुए मांचू सम्राट अपनी राजधानी से चार दिन की यात्रा करते हुए उनकी आगवानी के लिए पहुँचे। दलाई लामा की इस यात्रा का वर्णन करते हुए अमरीकी विद्वान एवं चीन में स्थित कूटनीतिज्ञ डबल्यू-डबल्यू रोखहिल ने लिखा, "दलाई लामा का एक स्वतन्त्र शासक के लिए उपयुक्त समारोह पूर्वक स्वागत किया गया और चीनी इतिहास में ऐसा कोई उल्लेख प्राप्त नहीं जिससे यह संकेत मिले कि उन्हें अन्य किसी रूप में स्वीकारा गया था, उस समय तिब्बत से चीन के सम्बन्ध ऐसे थे कि दलाई लामा की राज्य सत्ता पर जिसे मंगोलिया के गुशरी खान के सैन्यबल का सहारा था और सम्पूर्ण मंगोलिया की श्रद्धा प्राप्त थी चीन प्रश्न चिन्ह नहीं लगा सकता था।" [*The Dalai Lamas of Lhasa and their Relations with Emperors of China, 1644-1908,* T'oung Pao II, 1910, P-37 ]

इस अवसर पर पांचवें दलाई लामा और मांचू शासक ने एक दूसरे को अभूतपूर्व सम्मानजनक उपाधियों से अलंकृत किया। इस प्रकार छो-यॉन (जजमान-पुरोहित) सम्बन्ध और दृढ़ हुआ। श्वेत-पत्र में चीन उन सम्मानार्थ उपाधियों का उल्लेख करते हैं जो मांचू शासक ने दलाई लामा को दी परन्तु जान बूझकर उन्हें भुला देते हैं जो दलाई लामा ने मांचू शासकों को दीं। चीनी प्रचार तन्त्र यह घोषणा करता है कि इस कार्य के द्वारा ही दलाई लामा को तिब्बत पर शासन का अधिकार मिला था। इस प्रकार की व्याख्या इस बात को अनदेखा करती है कि उपाधियों का यह आदान-प्रदान दो प्रभुत्व सम्पन्न शासकों के बीच हुआ था। यदि दलाई लामा अपनी सत्ता के प्रयोग के लिए शाही उपाधि पर निर्भर थे तो सम्राट भी अपनी सत्ता के लिए दलाई लामा प्रदत्त उपाधि पर आश्रित थे।

चिंग वंश के सम्पूर्ण राज्य काल (1644-1911) में तिब्बत और मांचू शासकों के बीच सम्बन्ध यजमान-पुरोहित (छो-यॉन) के ही थे। 1720 में उनसे मदद की अपील पर मांचू शासक ने तिब्बत पर आक्रमण करने वाले जुंगार (Dzungar) को शीघ्र खदेड़ दिया और नए खोजे गए सातवें दलाई लामा को तिब्बती राजधानी तक सुरक्षा व्यवस्था में पहुंचाया।

अठारहवीं शताब्दी में अन्य तीन बार मांचू सेनाओं ने तिब्बत में प्रवेश किया, एक बार नेपाल के आक्रान्ता गोरखों से तिब्बत की रक्षा के लिए (1792) और दो बार गृह युद्धों (1728, 1751) के पश्चात् शान्ति स्थापना के लिए। हर बार वे तिब्बत की प्रार्थना पर आए और हर बार छो-यॉन (जजमान-पुरोहित) सम्बन्ध का सहारा लिया गया।

इन कठिन परिस्थितियों में मांचू शासकों का तिब्बत में प्रभाव निश्चय ही बढ़ा। परन्तु उनका प्रभाव शीघ्र ही समाप्त हो गया और तिब्बत ने अपनी रक्षा के लिए क्रमशः जम्मू (1841-42), नेपाल (1855-56) एवं ब्रिटिश भारत (1903-04) के आक्रान्ताओं से युद्ध किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से मांचू शासकों की तथा इससे जुड़े अम्बान (Amban) की भूमिका बहुत ही कम रह गई थी।

श्वेत-पत्र में सम्राट क्यानलोंग (Qianlong) द्वारा तिब्बत से सम्बन्धित 1793 में जारी तथाकथित 29 सूत्रीय राजाज्ञा अथवा नियम संहिता को जारी करने तथा राजदूतों की नियुक्ति पर पर्याप्त बल दिया गया है। इसमें इन "नियमों" को इस प्रकार दर्शाया गया है मानो ये तिब्बत पर मांचू शासकों की पूर्ण सत्ता के सूचक हों। वास्तव में नेपाल से युद्ध के पश्चात् तिब्बती प्रशासन को सुधारने के लिए ये 29 सुझाव मांचू सम्राट द्वारा तिब्बती सरकार को दिए गए थे। राजदूत, प्रशासक या वायसराए नहीं थे बल्कि मांचू हितों की रक्षार्थ नियुक्त व्यक्ति थे और सम्राट की ओर से दलाई लामा की रक्षा का दायित्व भी इनका था।

1792 में तिब्बत और नेपाल में एक विवाद खड़ा हुआ और दलाई लामा ने अपनी रक्षा के लिए मांचू सम्राट से अपील की। सम्राट ने एक विशाल सेना गोरखों को तिब्बत से बाहर मार भगाने और तिब्बत तथा नेपाल में शान्ति

सन्धि करवाने के लिए भेजी। क्योंकि तिब्बत द्वारा सहायता के लिए यह चौथी बार प्रार्थना की गई थी इस लिए मांचू शासक तिब्बती मामलों में अधिक हस्तक्षेप चाहते थे ताकि तिब्बत बार-बार विवादों में न उलझे जिससे मांचू सेनाओं को बार-बार युद्ध में न भेजना पड़े।

ये ''नियम'' संरक्षक सम्राट द्वारा दिए गए सुझाव थे न कि अपनी अधीनस्थ प्रजा को दिए गए आदेश, यह बात मांचू सेनापति एवं राजदूत फू-कांग-एन द्वारा आठवें दलाई लामा के समक्ष दिए गए कथन से होती है, जो इस प्रकार था,

''सम्राट ने मुझे (महान सेनापति को) ये विस्तृत अनुदेश दिए कि मैं इन मुद्दों पर क्रमशः विस्तारपूर्वक आपसे बातचीत करूँ। इससे सम्राट की यह चिन्ता स्पष्ट है कि तिब्बती लोगों का भला हो और सदैव के लिए उनका कल्याण सुनिश्चित किया जा सके। इसमें सन्देह नहीं कि दलाई लामा इन मुद्दों पर विस्तृत बहस और सहमति के पश्चात् सम्राट के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए इन्हें स्वीकार कर लेंगे। फिर भी यदि तिब्बती अपनी पुरानी जीवन-पद्धति से चिपके रहना चाहते हैं तो सम्राट अपने राजदूत को वापिस बुला लेगा और अपने सैनिकों की वापिसी के पश्चात् छावनी उठा लेगा। यदि भविष्य में फिर ऐसी कोई घटना होती है तो सम्राट उसमें सहायता नहीं करेगा। इसलिये तिब्बतियों को निर्णय कर लेना चाहिए कि उनके हित में क्या है और विरोध में क्या है, क्या हल्का है क्या भारी है और अपना चुनाव कर लेना चाहिए।'' [Quoted from Ya Han Chang's *Biography of the Dalai Lama in Bhod Ki Lo rGyus Rags Rims gYu Yi Phrengba,* Vol 2, Published by Tibet Institute of Social Science, Lhasa, 1991, P-316]

सम्राट के सुझावों को स्वीकारने अथवा नकारने की अपेक्षा तिब्बतियों ने जो सुझाव अपने लिए अच्छे समझे उन्हें स्वीकार कर लिया और जो अच्छे नहीं समझे उन्हें छोड़ दिया। जैसा कि स्वर्गीय पंचेन लामा के उत्तराधिकारी पंचेन छ्योकी ञीमा ने कहा, ''जहाँ पर चीनी सुझाव तिब्बती हितों से मेल खाते थे वहाँ उन्होंने राजदूत के सुझाव स्वीकार कर लिए परन्तु जहाँ उसका

परामर्श तिब्बत के राष्ट्रीय विश्वासों से मेल नहीं खाता था वहां स्वयं चीनी सम्राट भी उन्हें प्रभावित करने में असमर्थ था।'' [*Diary of Capt. O'Connor*, September 4, 1903]

इन ''29-सूत्रीय राजाज्ञाओं'' में से एक सुझाव यह भी था कि महान अवतारी लामाओं, जैसे दलाई लामा और पंचेन लामा आदि के अवतारों का चुनाव स्वर्ण कलश में लॉटरी डाल कर किया जाए। यह महत्त्वपूर्ण कार्य तिब्बत सरकार और महान लामाओं की ही जिम्मेवारी बना रहा जोकि दलाई लामा आदि के अवतार का चुनाव धार्मिक परम्पराओं के अनुसार करते रहे। इस प्रकार पहली बार 1808 में नौवें दलाई लामा की खोज में स्वर्ण कलश का प्रयोग होना था परन्तु तिब्बतियों ने उसकी उपेक्षा की।

इन ''राजाज्ञाओं'' में से एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु 'अम्बानों' की भूमिका के विषय में था। कभी उस की भूमिका राजदूत की होती थी और कभी संरक्षित राज्य के रैजिडेण्ट की रहती थी। इस सम्बन्ध की व्याख्या अम्बान यू ताई की उस स्पष्टीकरण से साफ जाहिर है जो उन्होंने 1903 में भारत सरकार के विदेश सचिव श्री मार्टिमर ड्यूराण्ड को दी जो इस प्रकार उल्लिखित है, ''वह (अम्बान) ल्हासा में एक महमान की तरह रहता था न कि स्वामी की तरह और वह असली स्वामियों की अनदेखी नहीं कर सकता था इस प्रकार कहने योग्य उसके पास कोई शक्ति नहीं थी।'' [ *Sir Mortimer Durand : A Biography* by Sir Percy Syk s, London, 1926, P. 166 ]

इस प्रकार दो लाज़ारिस्ट धर्मप्रचारक, हक और गेबेट, जो कि उस समय ल्हासा में थे ने भी अम्बान की स्थिति की इन शब्दों में व्यक्त किया है ''तिब्बत सरकार की स्थिति पोप के समकक्ष थी और चीनी राजदूत (अम्बान) की स्थिति वैसी थी जैसी कि आस्ट्रियन राजदूत की स्थिति रोम में रहती थी।'' [*Decouverte du Thibet*, 1845-1846, M Huc, 1933, P. 50 ] ''चीनी राजदूत'' का उल्लेख सामान्य गलत नामकरण की भूल है क्योंकि मांचू शासक इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि तिब्बत के साथ जजमान-पुरोहित के विशेष सम्बन्ध की रक्षा करते हुए केवल मांचू अथवा मंगोलियन

अम्बान (राजदूत) ही नियुक्त किए जाएं। चीनी इस सम्बन्ध से बहिष्कृत थे।

1908 में मांचू सेनाओं का तिब्बत पर असाधारण आक्रमण, तिब्बत और मांचू शासकों के सम्बन्धों में बड़े बदलाव का सूचक बना। पहले मांचू सेनाएं तिब्बत सरकार की प्रार्थना पर उसकी रक्षा के लिए आती रही थी परन्तु इस बार मांचू शासकों ने सेना के सहारे तिब्बत पर अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया जिसके द्वारा वे संभवतः तिब्बत में बढ़ रहे ब्रिटिश प्रभाव को समाप्त करना चाहते थे। 1910 में दलाई लामा भाग कर भारत आ गए परन्तु तिब्बत पर यह मांचू आधिपत्य अल्पजीवी रहा। जब 1910 में मांचू शासक ने दलाई लामा को अपदस्थ करना चाहा तो उसने (दलाई लामा ने) जजमान-पुरोहित सम्बन्ध समाप्त करने की घोषणा कर दी। संरक्षक ने अपने लामा पर आक्रमण किया था और इस प्रकार इन सम्बन्धों के आधार को ही ध्वस्त कर दिया था।

मांचू आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोध तब सफल हुई जब मांचू साम्राज्य 1912 में ध्वस्त हो गया और तिब्बत में उसकी सेनाओं ने आत्म समर्पण कर दिया। उसी गृष्म ऋतु में नेपाल की मध्यस्थता से चीन और तिब्बत में तीन-सूत्रीय सन्धि हुई जिसमें मांचू सेनाओं के विधिवत आत्म-समर्पण और तिब्बत की धरती से चले जाने को सुनिश्चित किया गया। वापिस ल्हासा पहुँच कर 14 फरवरी, 1913 को तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत की स्वतन्त्रता की पुनः पुष्टि कर दी।

## ब्रिटिश भारत के साथ सम्बन्ध ( 1857-1911 )

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेजों की रुचि तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने में बढ़ी। क्योंकि सभी हिमालयी राज्य किसी न किसी प्रकार की सन्धि से ब्रिटिश सरकार से बंधे थे इसलिए तिब्बत को यह भय हुआ कि यदि उन्होंने अंग्रेजों के तिब्बत प्रवेश का विरोध नहीं किया तो तिब्बत की स्वतन्त्रता को खतरा हो जाएगा।

तेरहवें दलाई लामा ने तिब्बत को स्वतन्त्रता के मार्ग पर अग्रसर किया। इस नीति से अंग्रेजों को परेशानी हुई, उनकी चिन्ता यह थी कि यदि रूस तिब्बत में हस्तक्षेप करने लगेगा तो इससे मध्य एशिया में सत्ता-संतुलन

प्रभावित होगा। तिब्बत सरकार से प्रभावी वार्ता करने में असमर्थ रहने पर अंग्रेजों ने मांचू शासकों से सम्बन्ध स्थापित किया ताकि तिब्बत को सहयोग के लिए विवश किया जा सके। इसके परिणाम स्वरूप तिब्बत की जानकारी और उपस्थिति के बिना तिब्बत के विषय में चीनी और अंग्रेज सरकारों में दो सन्धियां हुईं (1890 और 1893 में)। तिब्बत सरकार ने इन्हें अवैध करार दिया जिसके परिणाम स्वरूप 1903 में अंग्रेजों ने तिब्बत पर आक्रमण किया। मांचू शासक उस समय तिब्बत की सहायता के लिए नहीं आए तथा अम्बान यू-ताई के अनुसार उन्होंने तिब्बत की किसी भी कार्यवाही से अपने को अलग कर लिया। एक वर्ष के भीतर ही ब्रिटिश सेनाएं तिब्बत सरकार के साथ 'ल्हासा कान्वेन्शन' की सन्धि करके लौट गई।

'ल्हासा कान्वेंशन' की धाराओं से इस बात की आवश्यक रूप से पुष्टि होती है कि तिब्बत आन्तिरिक और बाह्य मामलों में प्रभुता संपन्न था न तो वह किस प्रकार सन्धि में वर्णित शक्तियां वैध रूप से अंग्रेजों को प्रदान कर सकता था? 'ल्हासा कान्वेंशन' में मांचू शासकों के साथ तिब्बत के किसी विशिष्ट सम्बन्ध को भी स्वीकृत नहीं किया गया। इस सन्धि पर हस्ताक्षर होने का अन्तर्निहित अर्थ यह था कि अंग्रेज यह स्वीकार करते हैं कि तिब्बत को बिना किसी बाहरी शक्ति की सलाह लिए सन्धि करने का अधिकार है।

चीन को सहयोग देने के लिए सहमत करवाने हेतु अंग्रेजों ने तिब्बत की जानकारी के बिना 1906 में चीन से एक समझौते (Adhesion Agreement) पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते तथा 1907 में हुए ब्रिटिश-रूस समझौते से यह स्थापित कर दिया गया कि अंग्रेजों का तिब्बत में प्रभाव क्षेत्र है और चीन की तिब्बत पर "सुज़िरेण्टी" (Suzerainty) की परिकल्पना भी मान्य है परन्तु इस बात को तिब्बत और मांचू शासकों ने कभी स्वीकार नहीं किया।

1908 में मांचू सेनाओं के तिब्बत पर आक्रमण के समय अंग्रेजों ने मांचू शासकों से तिब्बत में व्यापार खोलने के विषय में सन्धि की इसमें भी स्वतन्त्र तिब्बती सहभागिता नहीं रही।

भारत के वाइसराय लार्ड कर्जन ने सुज़िरेण्टी (Suzerainty) की अंग्रेजी परिकल्पना को स्पष्ट करते हुए कहा, ''तिब्बत पर चीन की सुज़िरेण्टी एक संवैधानिक कपोल-कल्पना है -एक राजनैतिक नाटक है जो इसलिए चल रहा है क्योंकि दोनों पक्षों के लिए सुविधाजनक है। वास्तव में दो चीनी अम्बान (अर्थात मांचू) ल्हासा में वाइसराय नहीं राजदूतों की तरह रहते हैं।'' [Papers CD 1920, No.66, GoI to IO, January 8, 1903, India Office Library ]

## भारत से सम्बन्ध

1947 में जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो ल्हासा स्थित ब्रिटिश राजनयिक मिशन भारत के अधीन हो गया और तिब्बत के साथ हुए सन्धि-सम्बन्ध उसे विरासत में मिले। तिब्बती विदेश विभाग को भारत सरकार के सन्देश से स्पष्ट है कि वह तिब्बत के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करता है जिसके अनुसार, ''भारत सरकार को (तिब्बत सरकार से) यह आश्वासन पाकर प्रसन्नता होगी कि तिब्बत सरकार भारत के साथ वर्तमान सम्बन्धों को बनाए रखना चाहती है जब तक कि दोनों पक्षों द्वारा स्वीकृत नए मुद्दों पर सहमति नहीं हो जाती। यही विधि ब्रिटिश शासन से विरासत में मिले सम्बन्धों के प्रति अन्य देशों के साथ अपनाई गई है।'' [*Notes, Memoranda and Letters Exchanged and Agreements Signed by the Governments of India and China,* Vol-2, 1959, P-39 ]

## आत्म-निर्णय

चीन का श्वेत-पत्र उसके तिब्बत पर स्वामित्व की चर्चा करता है; मानवाधिकारों से सम्बन्धित व्यापक मामलों की चर्चा करता है जिनमें सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों की बात कही गई है परन्तु तिब्बतियों के आत्म-निर्णय के मूल प्रश्न पर विचार नहीं करता।

अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अधीन ऐसी जनसंख्या जो एक जन (a people) होने के मानदण्ड पर खरी उतरती है उसे आत्म-निर्णय का अधिकार है। सरकारें इस अधिकार से उन्हें वंचित नहीं कर सकती और इस नियम का उन्हें

पालन करना होता है। पिछले दशकों में यह अधिकार औपनिवेशिक लोगों और देशों को ही मिला है परन्तु विशेष रूप से पिछले कुछ वर्षों में इसे उपनिवेशतर सन्दर्भों में भी प्रयोग किया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अधीन तिब्बती एक जन की परिभाषा में निश्चित रूप से आते हैं जैसा कि अन्य स्त्रोतों के साथ-साथ युनेस्को के मानवाधिकारों की परिकल्पना विषयक समिति के विशेषज्ञों ने व्याख्यायित किया है।

सभी शर्तों को पूरा करने वाले किसी अन्य जन की कल्पना करना कठिन है। ये शर्तें हैं - इतिहास, भाषा, संस्कृति, जाति, सांझे अस्तित्व और अनुभव की समानता, बहुसंख्यता अर्थात ऐसे लोगों की बहुलता जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीयता समुदाय मान्यता देना उचित समझे, ऐसी संस्थाओं का अस्तित्व जो इस सांझेपन को अभिव्यक्ति देती हों तथा आत्म-निर्णय के अधिकार को पाने की लोगों की इच्छा शक्ति।

आत्म-निर्णय के अधिकार से अभिप्राय लोगों के उस अधिकार से है जिसके द्वारा वे, "अपनी राजनैतिक स्थिति स्वयं निर्धारित करते हैं तथा अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का स्वयं निर्णय करते हैं। किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप इसमें नहीं होता।" [ *International Covenants on Civil and Political Rights*, Art. I, and *International Cov-en.ınts on Economic, Social and Cultural Rights*, Art. I.] जब से चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया है और आधिपत्य जमाया है तभी से तिब्बतियों को आत्म निर्णय के अधिकार से वंचित किया जाता रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अधीन 'चीन लोक गणराज्य' (P.R.C.) का यह दायित्व है कि वह यह अधिकार तिब्बतियों को दें।

आत्म निर्णय के अधिकार का उपयोग करने के फलस्वरूप कोई राज्य किसी अन्य राज्य में विलीन होने, संघ बनाने अथवा स्वतन्त्र होने का निर्णय ले सकता है परन्तु यह चुनाव आत्म-निर्णय के अधिकार का प्रयोग करने वाले लोगों का होना चाहिए। यह चुनाव स्वतन्त्र एवं बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के होना चाहिए। इस प्रकार यह तिब्बती लोगों का अधिकार है कि चीनी हस्तक्षेप के बिना इसका प्रयोग करें।

दलाई लामा अनेक वर्षों से चीन पर इस बात के लिए जोर देते रहे हैं कि वह अन्तर्राष्ट्रीय देखरेख में तिब्बत में जनमत संग्रह करवाए। यह सर्वाधिक वांछनीय तरीका है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों और व्यवहार पर आश्रित है।

## तिब्बत के आत्म-निर्णय के अधिकार को मान्यता

1961 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने प्रस्ताव संख्या 1723 (XVI) के द्वारा स्पष्ट रूप से तिब्बत के आत्म-निर्णय के अधिकार को स्वीकार किया था। संयुक्त राष्ट्र संघ ने चीन लोक गणराज्य को आदेश दिया था कि, "ऐसे क्रिया कलापों को बन्द करवाए जिनसे तिब्बतियों के मूल मानवाधिकारों का हनन होता है और उनकी स्वतन्त्रता नष्ट होती है जिसमें उनके आत्म-निर्णय का अधिकार भी शामिल है।" चार वर्ष पश्चात् 1965 में संयुक्त राष्ट्र महासभा प्रस्ताव संख्या 2079 (XX) द्वारा इसकी पुनः पुष्टि की।

इससे पूर्व 1959 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने तिब्बतियों के आत्म-निर्णय के अधिकार की भरपूर हिमायत की थी। भारत की संसद के निचले सदन, लोकसभा में उन्होंने कहा था, "तिब्बत के विषय में अन्तिम आवाज़ तिब्बत के लोगों की होनी चाहिए, और किसी की नहीं।"

निकट अतीत में दो अलग-अलग अवसरों पर जनाधिकारों और अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के विशेषज्ञों ने तिब्बत के 'आत्म-निर्णय' के अधिकार के दावे पर विचार किया।

नवम्बर, 1992 में जनता विषयक स्थायी ट्रिब्यूनल (The Permanent Tribunal of Peoples) की एक सप्ताह तक स्ट्रास्बर्ग में चली बैठक में उन दस्तावेजों और दलीलों को सुना गया जिनके आधार पर तिब्बत आत्म-निर्णय का अधिकार चाहता था और उसने पाया कि तिब्बत सामान्य 'जन' के उस वैध मानदण्ड पर खरा उतरता है जिन्हें 'आत्म-निर्णय' का अधिकार है इसलिए तिब्बती लोगों को आत्म-निर्णय के अधिकार को प्रयोग करने का अधिकार है।" ट्रिब्यूनल ने निष्कर्ष निकाला कि, "चीनी प्रशासन की तिब्बत की भूमि पर उपस्थिति को निश्चित रूप से विदेशी-आधिपत्य माना जाना चाहिए।" अन्ततः

अपना निर्णय देते हुए ट्रिब्यूनल ने कहा, ''तिब्बत के लोगों को 1950 से निरन्तर अपने आत्म-निर्णय के अधिकार से वंचित किए जाते रहे हैं।'' (*Session on Tibet, Verdict*, Permanent Tribunal of Peoples, Strasbourg, November 20, 1992, P-15 and 23, resp.)

इसके कुछ सप्ताह पश्चात्, इससे असम्बद्ध एक अन्य विचार गोष्ठी में विश्व के तीस प्रख्यात न्यायविद् युरोप, अफ्रीका, एशिया और अमरीका से लन्दन में एकत्रित हुए जिनमें से कुछ 'आत्म-निर्णय के अधिकार' पर विश्व के जाने-माने विशेषज्ञ भी थे। उन्होंने तिब्बतियों के आत्म-निर्णय के अधिकार की समस्या पर विचार किया। उपलब्ध प्रमाणों के व्यापक निरीक्षण के पश्चात् जिनमें चीनी 'श्वेत-पत्र' भी था, व्यापक कानूनी बहस के उपरान्त विचार-गोष्ठी का निष्कर्ष निम्न प्रकार से अंकित किया गया-

1. अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार तिब्बती लोगों को आत्म-निर्णय का पूर्ण अधिकार है, यह अधिकार ''तिब्बती लोगों का है।'' और ''चीन लोक गणराज्य के शासकीय तन्त्र अथवा अन्य किसी राज्य अथवा राष्ट्र का यह अधिकार नहीं है कि वह तिब्बतियों को उनके आत्म-निर्णय के अधिकार से वंचित करे।''
2. ''1949-50 के सैनिक अभियान के बाद से तिब्बत चीन के विदेशी आधिपत्य एवं अधिकार में है और उसका शासन एक दमनकारी औपनिवेशक प्रशासन के रूप में चलाया जाता रहा है।''
3. ''तिब्बत के विशेष सन्दर्भ में जिसका अलग अस्तित्व का एक लम्बा इतिहास है,'' तिब्बत के लोगों का आत्म निर्णय का अधिकार जिसमें स्वतन्त्रता का अधिकार भी शामिल है, राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय अखण्डता की दृष्टि से पूर्णतया वैध है। [*International Lawyers' Conference Statement on Tibet - London 1993*, London, January 10, 1993. P.6-8 |

अन्तर्राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी ने संयुक्त राष्ट्र संघ तथा सदस्य राष्ट्रों से अनुरोध किया कि वे तुरन्त ऐसे कदम उठाएं जिनसे तिब्बतियों का आत्म-निर्णय का अधिकार लागू किया जा सके, उसे प्राप्त किया जा सके।

जन ट्रिब्यूनल और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायविदों की गोष्ठी में दोनों जगह चीन सरकार के विचार विशेषकर जो 'श्वेत-पत्र' में दिए गए हैं पूरी तरह विश्लेषित किए गए और उन पर व्यापक बहस हुई। चीन सरकार को दोनों अवसर पर भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया परन्तु उसने भाग लेने से मना कर दिया। फिर भी उन्होंने श्वेत पत्र सहित अन्य बहुत से दस्तावेज विचारार्थ वहाँ अवश्य भेजे जिनमें उनके तर्क एवं दृष्टिकोण लक्षित होता था।

## निष्कर्ष

निश्चय ही तिब्बत के लोगों को आत्म-निर्णय का अधिकार है जिसके माध्यम से वे अपनी राजनैतिक स्थिति, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति का दिशा निर्धारण कर सकते हैं। यदि आत्म-निर्णय का अधिकार केवल उपनिवेशवाद के शिकार लोगों को दिया जाता है तो भी तिब्बती इस अधिकार को पाने के पूरी तरह अधिकारी हैं। समय आ गया है कि चीन लोक गणराज्य अपनी अन्तर्राष्ट्रीय जिम्मेवारी को निभाते हुए अन्तर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षकों की देखरेख में तिब्बत में जनमत-संग्रह करवाए।

## 2

# तिब्बत पर आक्रमण और अवैध आधिपत्य

अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार सन्धियां उन पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों पर तभी लागू होती हैं जबकि उन पर बलपूर्वक या बल का भय दिखा कर हस्ताक्षर न करवाए गए हों। यह बात वियना में सन्धियों विषयक कानून की कान्वेंशन से लक्षित होते है जिसे सामान्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का परिचायक माना जा सकता है।

चीन लोक गणराज्य इस नियम को गम्भीरतापूर्वक लेता है क्योंकि पश्चिमी देशों ने उसे ऐसी अनेक सन्धियों पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया जबकि वह कमजोर था। चीन लोक गणराज्य इस विषय में विशेषरूप से दृढ़ है कि ऐसी 'भेदभाव पूर्ण' सन्धियां और अन्य समझौते वैध नहीं हैं भले ही उन्हें किसी भी कारण से किसी ने भी हस्ताक्षरित किया हो।

जब तिब्बत पर चीन का आक्रमण प्रारम्भ हुआ और तिब्बत की छोटी सी सेना पराजित हो गई तो तिब्बत पर ऐसी सन्धि लादी गई जिसके अनुसार उसे चीन का भाग घोषित कर दिया गया भले ही उसे पर्याप्त स्वायत्तता प्रदान की गई। 'श्वेत-पत्र' में चीन इस बात का दावा करता है कि तिब्बत सरकार ने इस पर स्वेच्छा से हस्ताक्षर किए थे तथा दलाई लामा, उसकी सरकार और तिब्बती लोगों ने इसका व्यापक स्वागत किया था।

तथ्य इससे बिल्कुल भिन्न कहानी कहते हैं। तथ्य यह है कि तथाकथित 'तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति के लिए निर्मित सत्रह सूत्रीय समझौता' कभी भी वैध ढंग से हस्ताक्षरित नहीं हुआ और न ही तिब्बती लोगों ने इसे स्वीकार किया।

दलाई लामा लिखते हैं कि तिब्बती प्रधानमन्त्री लुखान्गवा ने चीनी सेनापति झाँग जिन्वू से 1952 में कहा था, ''सत्रह-सूत्रीय समझौते की धाराओं

का हवाला देना वाहियात बात है। हमारे लोगों ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया और स्वयं चीनियों ने इसकी धाराओं का बार-बार उल्लंघन किया है। उनकी सेना का अभी भी पूर्वी तिब्बत पर अधिकार है और इस क्षेत्र को शर्तों के अनुसार अभी भी तिब्बत को लौटाया नहीं गया है जैसा कि किया जाना चाहिए था।'' [*My Land and My People*, Dalai Lama, New York, 1992, P. 95]

## राजनयिक गतिविधियाँ एवं सैनिक धमकियां

प्रथम अक्तूबर 1949 को कोमिंतांग सरकार के पतन और चीन लोक गणराज्य के उदय के साथ ही साम्यवादियों ने रेडियो बीजिंग से घोषणाएं करनी आरम्भ की कि, ''चीन की जन मुक्ति सेनाएं सारे चीनी क्षेत्रों को अवश्य मुक्त करवाएं जिन में तिब्बत, सिंक्यांग, हेनान और ताईवान भी शामिल हैं।'' कुछ हद तक इस धमकी को दृष्टिगत रखते हुए और चीन के साथ चले आ रहे पुराने सीमाओं सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिए तिब्बत सरकार के विदेश कार्यालय ने 2 नवम्बर 1949 को माओ-चे़-तुंग को वार्ता के लिए लिखा जिससे ये विवाद हल किए जा सकें। इस पत्र की प्रतियां भारत, इंग्लैंड और अमरीका की सरकारों को भी भेजी गईं। यद्यपि ये सरकारें साम्यवाद के विस्तार दक्षिण-पूर्व एशिया की स्थिरता के लिए खतरा मानती थी तो भी इन्होंने तिब्बत को यह सुझाव दिया कि वह सीधे चीन से वार्ता करे क्योंकि और कोई रास्ता अपनाने से चीन के सैनिक हस्तक्षेप का भय हो सकता था।

तिब्बत सरकार ने अपने दो उच्च पदस्थ अधिकारियों श्री चे़पोन शाकब्पा और ची़छाग थुपतेन ग्यालपो को किसी तीसरे देश में जो संभवतः रूस, सिंगापुर, या हांगकांग हो सकता था, चीन के साथ वार्तालाप के लिए भेजा। ये अधिकारी तिब्बत द्वारा माओ-चे़-तुंग को लिखे पत्र पर तथा चीन रेडियो द्वारा 'तिब्बत मुक्ति' के विषय में दी जा रही धमकियों पर विचार करने वाले थे। वे चीन से यह आश्वासन चाहते थे कि तिब्बत की क्षेत्रीय प्रभुसत्ता को खण्डित नहीं किया जाएगा और बताना चाहते थे कि तिब्बत किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप को सहन नहीं करेगा।

तिब्बती प्रतिनिधियों ने जब दिल्ली में हाँगकाँग के लिए पार पत्र (Visa) के लिए आवेदन किया तब भारत स्थित चीन के राजदूत ने कहा कि नया चीनी राजदूत दिल्ली आने वाला है और वे बातचीत उसी से प्रारम्भ करें।

जब वार्ता चल रही थी तब चीनी राजदूत युवान जोंग सियां ने कहा कि तिब्बती दल उनकी दो शर्तें माने : (1) तिब्बत की सुरक्षा की देखरेख चीन के अधीन होगी; (2) तिब्बत को चीन के भाग के रूप में स्वीकार किया जाए। इस समझौते की पुष्टि के लिए उन्हें इसके पश्चात् चीन जाना था। चीन की मांगों के विषय में जब तिब्बत सरकार को सूचित किया गया तो सरकार ने इन्हें अस्वीकार करने की आज्ञा दी। इस प्रकार वार्तालाप स्थगित कर दिया गया।

7 अक्तूबर 1950 को राजनैतिक कोमिसार वांग कायमी के नेतृत्व में 40,000 चीनियों ने पूर्वी तिब्बत की राजधानी छामदो पर आठ दिशाओं से आक्रमण किया। तिब्बत की 8000 सैनिकों और अर्द्ध सैनिकों की फौज पराजित हुई। दो दिन के पश्चात् छामदो का पतन हो गया और मन्त्री डापो डवांग जिग्मे जो कि क्षेत्रीय राज्यपाल था बन्दी बना लिया गया। 4,000 से अधिक तिब्बती योद्धा इस युद्ध में मारे गए।

चीन का तिब्बत पर आक्रमण भारत के लिए एक भयंकर आघात था। 26 अक्तूबर 1950 को भारत के विदेश मन्त्री ने तीखी टिप्पणी में लिखा: "अब चीन सरकार द्वारा तिब्बत पर आक्रमण की आज्ञा दे दी गई है, शान्तिपूर्ण वार्ता ऐसे समय में संभव नहीं है क्योंकि तिब्बतियों में यह भय बना रहेगा कि बातचीत दबाव में हो रहा है। विश्व के वर्तमान घटनाक्रम के सन्दर्भ में चीन सरकार की यह कार्यवाही निन्दनीय है तथा यह विश्व शान्ति अथवा चीन के हित में नहीं है।" अमरीका और ब्रिटेन सहित अनेक राष्ट्रों ने भारत के इस पक्ष का समर्थन किया।

नवम्बर 1950 में तिब्बत की राष्ट्रीय संसद ने आपात बैठक बुला कर प्रस्ताव पारित किया कि पन्द्रह वर्षीय दलाई लामा सरकार की लगाम अपने हाथ में लें और राज्याध्यक्ष की पूरी जिम्मेवारी सम्भालें। इसके पश्चात् दलाई लामा से प्रार्थना की गई कि वह ल्हासा छोड़कर भारतीय सीमा के निकट डोमो (यातुंग) में रहें जिससे कि उन्हें कोई व्यक्तिगत खतरा न रहे। इसी समय तिब्बत के विदेश विभाग ने निम्नलिखित वक्तव्य जारी किया, "तिब्बत

दलाई लामा के पीछे एक होकर खड़ा है जिन्होंने पूर्ण राज्याधिकार सम्भाल लिया है....... हमने संसार को शान्तिपूर्ण हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना की है। यह आक्रमण का बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण है।''

तिब्बत सरकार ने 7 नवम्बर, 1950 को संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को हस्तक्षेप के लिए प्रार्थना करते हुए लिखा। इसमें आंशिक रूप से कहा गया था, ''तिब्बत जानता है कि वह चीन के आक्रमण का सामना नहीं कर सकता। यही कारण था कि उसने चीन के साथ मैत्रीपूर्ण वार्ता द्वारा समस्या का समाधान चाहा था।.... हालांकि इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि शान्तिपूर्ण तिब्बत युद्ध के लिए प्रशिक्षित चीनी सेनाओं का सामना कर सकता है, हमारी यह धारणा है कि संयुक्त राष्ट्र संसार के किसी भी कौने में होने वाले आक्रमण को रोकने का निश्चय किए हुए है।''

17 नवम्बर, 1950 को एल सेल्वेडोर ने तिब्बत के विरुद्ध आक्रमण को संयुक्त राष्ट्र की कार्यसूची में रखने की विधिवत प्रार्थना की। परन्तु भारत के हस्तक्षेप से यह कार्यसूची में नहीं रखा जा सका क्योंकि भारत ने यह रुख अपनाया कि परस्पर बातचीत से ऐसा समाधान खोज लिया जाएगा जो कि भारत, तिब्बत और चीन के हित में हो। तिब्बती प्रतिनिधिमण्डल द्वारा 8 दिसम्बर 1950 को संयुक्त राष्ट्र को लिखे एक अन्य पत्र से भी स्थिति में परिवर्तन नहीं आया।

जब पूर्वी और उत्तरी तिब्बत पर चीन ने अधिकार कर लिया, उसकी छोटी सी सेना पराजित और नष्ट कर दी गई, लाखों चीनी सैनिक मध्य तिब्बत की ओर बढ़ चले, विश्व समुदाय का कोई सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं हुआ तब दलाई लामा और तिब्बत सरकार ने बातचीत के लिए एक प्रतिनिधि मण्डल बीजिंग भेजने का निर्णय लिया।

## ''सत्रह सूत्रीय समझौता''

1951 में मन्त्री डापो डवांग जिग्मे के नेतृत्व में एक पांच सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल बीजिंग भेजा गया। तिब्बत सरकार ने इसे अपना पक्ष रखने और चीन सरकार का पक्ष सुनने का अधिकार दिया था। परन्तु जैसा कि श्वेत-पत्र में दावा किया गया है कि इसके पास पूर्णाधिकार थे गलत है और इसे

सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं था। इसके विपरीत इसे कहा गया था कि सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दे सरकार को विचारार्थ भेजे।

29 अप्रैल को चीनी प्रतिनिधि मण्डल द्वारा एक समझौते का मसौदा पेश करने के साथ वार्ताएं प्रारम्भ हुई। तिब्बती प्रतिनिधि मण्डल ने इसे पूरी तरह अस्वीकार कर दिया जिसके पश्चात् चीनियों ने एक सुधरा हुआ प्रारूप प्रस्तुत किया जो कि तिब्बतियों को स्वीकार्य नहीं था। इस समय चीनी प्रतिनिधि ली वेहान और झांग जिन्वू ने स्पष्ट किया कि ये शर्तें अन्तिम थी और यह अन्तिम चेतावनी देने के समान था। तिब्बती प्रतिनिधियों के विरुद्ध कठोर शब्द प्रयोग किए गए, उनका अपमान किया गया, उनको हिंसा का भय दिखाया गया और कैदी बना कर रखा गया और आगे वार्ता की आज्ञा नहीं दी गई। चीनी दावों के विपरीत तिब्बती प्रतिनिधियों को अपनी सरकार से सम्पर्क स्थापित नहीं करने दिया गया जिससे वे सरकार से निर्देश ले पाते। उन्हें यह कहा गया कि या तो वे अपनी मर्जी से ''समझौते'' पर हस्ताक्षर कर दें या फिर मध्य तिब्बत में ल्हासा पर चीनी सेनाओं के आक्रमण को तैयार रहें। चुनाव के लिए उनके सम्मुख यही दो मार्ग रखे गए।

23 मई, 1951 को भयंकर दबाव में, तिब्बत सरकार को बताए बिना इस प्रतिनिधि मण्डल को उस समझौते पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसे ''केन्द्रीय जनवादी सरकार तथा स्थानीय तिब्बत सरकार के मध्य तिब्बत की 'शान्तिपूर्ण मुक्ति' के समझौते'' का नाम दिया गया। प्रतिनिधि मण्डल ने चीन सरकार को सचेत करते हुए कहा था कि वे केवल व्यक्तिगत रूप से हस्ताक्षर कर रहे हैं और उन्हें तिब्बत सरकार अथवा दलाई लामा पर इन शर्तों को लादने का अधिकार नहीं है। परन्तु इन सब बातों से चीन पर प्रभाव नहीं पड़ा और उसने हस्ताक्षर समारोह के पश्चात् विश्व के सम्मुख घोषित कर दिया कि ''तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति'' के लिए ''समझौता'' हो गया है। यहाँ तक कि दस्तावेजों पर लगी मोहरें भी चीन सरकार द्वारा जाली बनवाई गई ताकि विश्वसनीयता का भ्रम पैदा किया जा सके।

इस ''समझौते'' के सत्रह सूत्रों में चीन की सेनाओं को यह अधिकार दिया गया था के वे तिब्बत में प्रवेश कर सकती हैं। साथ ही चीन द्वारा इस बात का वचन दिया गया था कि चीन तिब्बत में प्रचलित राजनीतिक ढाँचे को परिवर्तित नहीं करेगा और न ही दलाई लामा और पंचेन लामा के पद, कार्यों

और शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। तिब्बत के लोगों को क्षेत्रीय स्वायत्तता प्रदान की जाएगी तथा तिब्बत के लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं रीति रिवाजों का सम्मान किया जाएगा। तिब्बत में आन्तरिक सुधार प्रमुख तिब्बती नेताओं के परामर्श के बिना किसी दबाव के किए जाएंगे।

जिसे "सत्रह सूत्रीय समझौते" का नाम दिया गया उसका पूरा मसौदा 27 मई, 1951 को रेडियो बीजिंग से प्रसारित किया गया। दलाई लामा और उसकी सरकार ने इस समय पहली बार इस विनाशकारी दस्तावेज के विषय में सुना। डोमो (जहाँ दलाई लामा रह रहे थे) में तथा ल्हासा में लोगों को इसे सुनकर गहरा धक्का लगा और इस पर विश्वास नहीं कर सके।

तुरन्त बीजिंग स्थित तिब्बती प्रतिनिधि मण्डली की भर्त्सना करते हुए एक सन्देश भेजा गया जिसमें सरकार से बिना परामर्श किए अथवा निर्देश लिए "समझौते" पर हस्ताक्षर करने की आलोचना की गई थी। प्रतिनिधिमण्डल से कहा गया कि जिस दस्तावेज पर उन्होंने हस्ताक्षर किए हैं उसकी प्रति तिब्बत भेजें और आगे निर्देश मिलने तक बीजिंग में प्रतीक्षा करें। उसी समय दूरभाष से सन्देश मिला कि चीनी प्रतिनिधि सेनापति झांग जिनवू भारत के रास्ते डोमो पहुँच रहा है। इसमें कहा गया था कि प्रतिनिधि मण्डल के कुछ सदस्य भारत होकर लौट रहे हैं और उनका नेता सीधे ल्हासा पहुँच रहा है।

दलाई लामा और उसकी सरकार ने सार्वजनिक रूप से "समझौते" को निरस्त करना स्थगित कर दिया। 17 अगस्त 1951 को दलाई लामा इस आशा से ल्हासा पहुँचे कि चीन के साथ पुनः वार्ता करके और अधिक लाभदायक सन्धि कर सकें।

9 सितम्बर, 1951 को तीन हजार चीनी सैनिक ल्हासा में घुस आए तथा उनके साथ ही पूर्वी तिब्बत और उत्तर में पूर्वी तुर्किस्तान (सिंक्यांग) से 20,000 चीनी सैनिक उधर बढ़ चले। चीनी जन मुक्ति सेनाओं ने रुधोक और गरतोक, तथा साथ ही ग्यांगचे़ और शिगाचे़ के प्रमुख शहरों पर कब्जा कर लिया।

तिब्बत में ल्हासा समेत सभी नगरों पर अधिकार जमाने तथा पूर्वी और पश्चिमी तिब्बत में विशाल सेनाओं के पहुँच जाने के साथ ही तिब्बत पर चीनी सेना का आधिपत्य पूरा हो गया। इस स्थिति में चीन ने दलाई लामा से पुनः वार्ता करने से इन्कार कर दिया क्योंकि दलाई लामा चीन के साथ किसी

समझौते को मानने अथवा न मानने की क्षमता खो चुके थे। परन्तु पहली बार जब स्वतन्त्र रूप से दलाई लामा अपनी बात कहने में समर्थ हुए वह समय 20 जून, 1959 को आया जब भारत में प्रवेश करने के साथ ही दलाई लामा ने इस तथाकथित समझौते का खण्डन किया क्योंकि यह शस्त्रों का भय दिखाकर तिब्बतियों पर थोपा गया था।

''तिब्बत की शान्तिपूर्ण मुक्ति विषयक सत्रह सूत्रीय समझौते'' और तिब्बत पर अधिकार जमाने का मूल्यांकन करते समय दो बाते महत्त्वपूर्ण हैं। पहली यह कि तिब्बत में घुसते समय चीनी जन मुक्ति सेना किसी सीमा तक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन कर रही थी और दूसरे ''समझौते'' पर हस्ताक्षर करने सम्बन्धी तथ्य।

सन्धियों सम्बन्धी सार्वभौमिक सिद्धान्त यही है कि समझौता करने वाले पक्ष स्वेच्छा से परस्पर सहमति के आधार पर उस पर हस्ताक्षर कर उसका पालन करते हैं जिसका तात्पर्य यह है कि स्वेच्छा से हस्ताक्षर करना किसी सन्धि की वैधता का प्रमाण है। धमकियों और बल प्रयोग के आधार पर की गई सन्धियां वैध नहीं हैं विशेषरूप से जबकि दबाव सन्धि वार्ता करने वालों पर ही नहीं बल्कि उस देश और सरकार पर भी डाली गई हो।

जब चीन तिब्बत के बड़े हिस्से पर अधिकार जमा चुका था और सन्धि पर हस्ताक्षर न होने की स्थिति में विशाल सेना के साथ ल्हासा पर आक्रमण की धमकी दे रहा था उस समय की गई सन्धि अपने मूल में ही अवैध है और बाद में यदि तिब्बत सरकार उसकी पुष्टि भी कर देती तब भी वह अवैध रहती। चीन सरकार द्वारा श्वेत-पत्र में किए गए दावे के विपरीत तथ्य यह है कि दलाई लामा और तिब्बत सरकार ने उस पर स्वेच्छा से हस्ताक्षर नहीं किए थे।

वास्तव में 6 अप्रैल 1952 को चीन के साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति को तिब्बत में अपने कार्य नीति पर निर्देश देते हुए माओ-चे-तुंग ने स्वीकार किया था, ''न केवल दो प्रधान मन्त्री बल्कि दलाई लामा और उसके गिरोह के अधिकांश लोग इस समझौते को मानने और लागू करने में आनाकानी कर रहे हैं।....... अभी हमारे पास समझौते को पूरी तरह लागू करने का आधार नहीं है और न ही जन समूह के समर्थन का आधार हमारे पास है न ही उच्च वर्ग का।'' (*Selected Works of Mao Tsetung*, Vol. 5, Foreign Language Press, Peking, 1977, p.75)

# 3
# राष्ट्रीय विद्रोह

जब लोगों का दमन किया जाता है तो इस बात की संभावना बनती है कि लोग दमनकारी के विरुद्ध उठ खड़े हों। 1950 तक तिब्बत में कभी भी जन-विद्रोह नहीं हुआ। तिब्बत में चीन के विरुद्ध प्रतिरोध आन्दोलन चीनी आक्रमण के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। 1956 तक आते-आते पूर्वी तिब्बत के खाम और आमदो प्रान्तों में गलियों में लड़ाई होने लगी थी। तीन वर्ष पश्चात् यह विद्रोह राष्ट्रीय स्तर पर फैल गया था जिसके परिणामस्वरूप मार्च 1959 में ल्हासा में विशाल प्रदर्शन हुआ और दलाई लामा को अपने 80,000 अनुयाइयों के साथ पड़ोसी देशों में शरण लेनी पड़ी। चीन की जन मुक्ति सेना ने लाखों तिब्बतियों का कत्ले-आम किया।

तब से आज तक तिब्बती विद्रोह और प्रदर्शन जारी हैं। 1987 और 1993 के बीच ही ल्हासा और तिब्बत के अन्य भागों में दो सौ से अधिक प्रदर्शन हो चुके हैं। कुछ छोटे थे और अन्य विशालकाय। चीनी सेनाओं ने अधिकांश प्रदर्शनों को पाश्विक शक्ति के साथ कुचल दिया। मार्च 1989 में तिब्बत के इतिहास में दूसरी बार मार्शल-लॉ लगा जबकि पहली बार 1959 में लगा था।

चीन सरकार तिब्बतियों के इस जन-प्रतिरोध को कुछ हताश अभिजात तिब्बतियों का काम सिद्ध करने की कोशिश करती है जो कि शोषण और दमन पर आधारित प्राचीन व्यवस्था को तिब्बत पर लादना चाहते हैं।

चीनी दिखाते हैं कि पचानवें प्रतिशत तिब्बती मुट्ठी भर अभिजात लोगों और लामाओं द्वारा गुलाम बना कर रखे गए थे और उनका क्रूर शोषण हुआ था। चीन जिस बात को स्पष्ट नहीं कर पाता है वह यह है कि ये दलित-शोषित तिब्बती विद्रोह के लिए कभी क्यों नहीं उठे जबकि तिब्बत सरकार के

पास न कभी राष्ट्रीय पुलिस रही और लम्बे इतिहास में थोड़ा सा समय छोड़कर न कभी शक्तिशाली सेना रही।

फिर भी आज वही तिब्बती चीन के विशाल रक्षा प्रबन्धों और सेना के सम्मुख अत्यधिक खतरा उठाकर भी विद्रोह कर रहे हैं और विद्रोह थम नहीं रहा है।

विद्रोहों में भाग लेने वाले तिब्बतियों की समाज रचना पर यदि हम विचार करें तो पाएंगे कि उनमें से 80% से भी अधिक न तो अभिजात वर्गीय हैं और न ही लामा हैं। इससे भी बढ़कर बात यह है कि अपने देश से बाहर आकर रहने वाले तिब्बती लोगों में 85% से अधिक लोग वे हैं जिन्हें चीनी "दास वर्ग" का घोषित करते हैं न कि तथाकथित उच्च वर्ग के सम्भ्रान्त लोग।

## 1959 में हुए विद्रोह के कारण

आइए हम उन कारणों पर विचार करें जिनसे तिब्बती लोग 1959 के विद्रोह के लिए विवश हुए। चीनी सेनाओं के तिब्बत में प्रवेश के साथ ही यह प्रयास किया गया कि तिब्बत सरकार की प्रभुसत्ता को नीचा दिखाया जाए और चीनी सत्ता स्थापित की जाए। यह कार्य तीन प्रकार से किया गया। सर्वप्रथम तिब्बतियों में राजनैतिक और क्षेत्रीय भेदभाव पैदा किया गया जो कि उनकी फूट डालो और राज करो की नीति का हिस्सा था। दूसरे कुछ सामाजिक और आर्थिक सुधार, तिब्बतियों की इच्छा के विरुद्ध थोपे गए जिससे तिब्बती समाज का ताना-बाना बदला जाए। तीसरे चीन सरकार के विभिन्न अंगों का निर्माण किया गया और उनके अधीन नई संस्थाएं बनाई गईं जो कि उस समय में वर्तमान तिब्बती संस्थाओं के समानंतर काम करती थी।

* 24 नवम्बर 1950 और 19 अक्तूबर 1953 के बीच चीन ने खाम प्रान्त के बड़े भाग का विलय पड़ौस में स्थित चीनी प्रान्त सिठुआन में कर दिया। खाम प्रान्त को तथाकथित दो स्वायत्तशासी क्षेत्रों और एक स्वायत्तशासी जिले में विभाजित कर दिया गया। 13 सितम्बर, 1957 को खाम प्रान्त के एक अन्य टुकड़े को 'देचेन तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र' का नाम देकर यूनान प्रान्त के अधीन कर दिया।

* आमदो के अधिकांश भाग को जिसमें खाम का छोटा सा क्षेत्र भी था, चीन के एक प्रान्त में बदल दिया गया और इसका नाम चिंगहाई रखा। आमदो प्रान्त के एक भाग को 'डापा तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र' का नाम देकर सिठुआन प्रान्त में मिला दिया गया। आमदो के शेष भाग को उपविभाजित कर 'तियान्झू तिब्बती स्वायत्तशासी जिला' (मई 6, 1950) और 'केनल्हो तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र (अक्तूबर 1, 1953) में बदल दिया गया और चीन के प्रान्त गाँसू में उसका विलय कर दिया गया।
* 9 सितम्बर 1965 को चीन ने तथाकथित 'तिब्बत स्वायत्त क्षेत्रीय सरकार' का गठन किया और पूरे ऊ-चांग प्रान्त और खाम के कुछ भागों के प्रशासन को इसके अधीन कर लिया।
* चीन ने शेरपा, मोनपा, ल्होपा, तेंगपा और झांगपा आदि समूहों को जो अपने को तिब्बती कहते थे, तिब्बती राष्ट्रीयता से विहीन कर चीन के विशिष्ट अल्प संख्यक समूहों में गिनना प्रारम्भ किया।

चीन की जन मुक्ति सेनाओं द्वारा जौ एवं अन्य खाद्य पदार्थों के हज़ारों टन के भण्डार काबू में कर लेने के कारण तिब्बती इतिहास में पहली बार अकाल की सी स्थितियां पैदा हुईं तथा ल्हासा में विरोध सभाओं का आयोजन करना पड़ा।

प्रथम बड़ा लोकप्रिय प्रतिरोध संगठन 'मीमांग छ़ोंगदू' (लोक परिषद) स्वैच्छिक रूप में संगठित हुआ और उसने चीनी सैनिक नेतृत्व को एक ज्ञापन देकर मांग की कि चीनी सेना तिब्बत से निकल जाए और तिब्बतियों के मामलों में हस्तक्षेप बन्द कर दे। चीन ने तुरन्त प्रतिक्रिया दिखाते हुए दो तिब्बती प्रधान मन्त्रियों, लुखांग्वा और लोबसांग टाशी, को पद त्यागने पर विवश किया क्योंकि वे चीनी शासन और 'सत्रह-सूत्रीय समझौते' का खुलकर विरोध करते थे और पांच मीमांग छ़ोंगदू नेताओं को जेल में डाल दिया गया जिसके परिणाम स्वरूप संगठन भूमिगत हो गया।

1954 में चीन के निमन्त्रण पर दलाई लामा बीजिंग गये। 'सत्रह-सूत्रीय समझौते' के अधीन स्वीकृत तिब्बत सरकार की विशिष्ट सवायत्तशासी स्थिति को 'चाईनीज़ पीपल्स कांग्रेस' ने एक नए संविधान को ग्रहण करके समाप्त कर

दिया। इसके पश्चात् 'तिब्बत के स्वायत्तशासी क्षेत्र विषयक तैयारी की समिति का प्रस्ताव' (PCART) पारित किया गया जिसका लक्ष्य तिब्बती प्रशासन को चीनी प्रशासन में और अधिक विलीन करना था। यह तैयारी समिति तिब्बत सरकार के स्थान पर केन्द्रीय प्रशासनिक कार्य करने वाली थी। दलाई लामा को इसका अध्यक्ष बनाया गया परन्तु उन्हें कोई अधिकार नहीं दिए गए।

जैसा कि दलाई लामा ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''समिति शक्ति विहीन थी, तिब्बती प्रतिनिधित्व का दिखावा मात्र थी जबकि वास्तविक सत्ता चीनियों के हाथ में थी। वास्तव में मूल नीतियां एक अन्य समिति द्वारा निर्धारित की जाती थी जिसका नाम 'तिब्बत स्थित चीन की कम्युनिस्ट पार्टी' था और उसमें कोई तिब्बती सदस्य नहीं था।'' [Dalai Lama, *ibid*; p. 133]

1956 में पी०सी०ए०आर०टी० की स्थापना हुई और टाशी ल्हुन्पो क्षेत्र एवं छामदो के गर्वनर जनरल (तिब्बत सरकार द्वारा नियुक्त) के अधिकार क्षेत्र में स्थित पूर्वी तिब्बत को ल्हासा स्थित तिब्बत सरकार से मुक्त करके उसके अंगों को तिब्बत सरकार के समकक्ष शक्ति प्रदान की गई जिससे तिब्बत सरकार की पकड़ उस पर कमजोर हुई। आमदो और खाम में विशेष रूप से तथा पूरे तिब्बत में सामान्य रुप से राजनैतिक, सामाजिक एवं कृषि सुधार थोपे गए।

धार्मिक नेताओं और मठों पर आक्रमण आम हो गए। इन सब के परिणाम स्वरूप हिंसक प्रतिक्रियाओं ने जन्म लिया।

'सत्रह सूत्रीय समझौते' में यह गारन्टी दी गई थी कि तिब्बतियों पर किसी प्रकार के सुधार थोपे नहीं जाएंगे। परन्तु पूर्वी तिब्बत में इन्हें तुरन्त जारी कर लागू कर दिया गया। चीनियों की बढ़ती जल्दबाजी और आक्रामकता के कारण हिंसक प्रतिक्रियाएं हुईं जो सशस्त्र संघर्ष में बदल गई जिससे प्रतिरोध और सैनिक दमन का दुष्चक्र चला जिसमें खाम और आमदो सहित समस्त पूर्वी तिब्बत डूब गया।

जैसे-जैसे हिंसा तिब्बत के अन्य भागों में भड़कने लगी उसी के परिणाम स्वरूप 1956 की गर्मियों तक व्यापक स्तर पर गोरिल्ला युद्ध प्रारम्भ हो गया। तिब्बत के पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्रों से तिब्बती शरणार्थी ल्हासा पहुँचने लगे। एक वर्ष के भीतर ही युद्ध मध्यवर्ती तिब्बत में भी फैल गया तथा

1958 में तेनसुंग धंगलाग मागर (धर्म रक्षा के लिए स्वयंसेवी बल) तथा मीमांग छ़ोंगदू और छुषी गाँगढुक (चार नदियां छह उपत्यकाएं) नामक संगठन बने। इस वर्ष के पतझड़ तक इस जनसेना ने जिसकी संख्या 80,000 के लगभग थी दक्षिण तिब्बत के अधिकांश भागों तथा पूर्वी तिब्बत के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया।

दलाई लामा ने अपने लोगों को भयंकर रक्तपात से बचाने के लिए शान्त करने का पूरा प्रयास किया। परन्तु फिर भी तिब्बत में हालात खराब होते गए विशेषकर दलाई लामा की अनुपस्थिति में जो कि 1956 में भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू के निमन्त्रण पर बुद्ध जयन्ती कार्यक्रमों में भाग लेने गए हुए थे। दिल्ली में नेहरु और चाऊ एन लाई से भेंट करते हुए दलाई लामा ने स्पष्ट किया था कि उनके अपने देश तिब्बत में स्थितियां विस्फोटक हैं तथा वे भारत में शरण लेने की सोच रहे हैं। नेहरू ने दलाई लामा को ऐसा करने से रोका।

दलाई लामा को तिब्बत लौटने के लिए प्रेरित करने हेतु चीन सरकार ने 'समाजवादी एवं प्रजातांत्रिक सुधारों' को तुरन्त कुछ समय के लिए स्थगित करने की घोषणा की।

यह भी समझौता हुआ कि अधिकांश चीनी नागरिकों को वापिस बुला लिया जाएगा और पी०सी०ए०आर०टी० के विभागों की संख्या आधी कर दी जाएगी। इसके बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध किया कि ये वायदे झूठे थे। आने वाले वर्ष में चीन सरकार ने समाजवादी आन्दोलन को तीव्र कर दिया, तिब्बतियों को निष्कासित किया और पर्याप्त संख्या में सैनिक टुकड़ियां तिब्बत में भेजीं और इस प्रकार जो पहले चीनी सैनिकों में थोड़ी कमी आई थी उससे अधिक उसकी भरपाई हो गई।

## राष्ट्रीय विद्रोह और दलाई लामा का पलायन

अवश्यम्भावी मुकाबला 1959 में हुआ। यह सामान्य भय था कि दलाई लामा को बन्दी बना कर बीजिंग ले जाया जाएगा। खाम और आमदो में तिब्बती ऐसे कटु अनुभवों से गुजर चुके थे जबकि अनेक लामा और स्थानीय

नेता चीनी सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा अन्य समारोह में बुलाए गए और वे एकाएक रहस्यमय ढंग से गायब हो गए।

10 मार्च को जब दलाई लामा को चीन के सैनिक अधिकारी ने सैनिक छावनी में नाट्य कार्यक्रम के लिए आमन्त्रित किया तो दलाई लामा की सुरक्षा के प्रति भय और बढ़ गया। तिब्बतियों का सन्देह तब और बढ़ गया जब चीनियों द्वारा यह निर्देश दिया गया कि दलाई लामा अपने परम्परागत अंग रक्षकों के साथ न आएं। ल्हासा में लोग दलाई लामा को चीन की इस चालबाजी में फँसने नहीं देना चाहते थे।

10 मार्च 1959 को एक विशाल प्रदर्शन ल्हासा में हुआ और हज़ारों लोगों ने दलाई लामा के गृष्मकालीन महल, नोरबूलिंग्का को घेर लिया ताकि वह चीनी नाट्य-कार्यक्रम में न जा सकें। आने वाले दिनों में विशाल सभाएं हुईं जिनमें मांग की गई कि चीनी, तिब्बत छोड़ जाएं और तिब्बत की पूर्ण आज़ादी बहाल की जाए।

दलाई लामा ने नोरबूलिंग्का के समीप विस्फोटक स्थिति को देखकर लोगों को वापिस जाने के लिए कहा और मुख्य चीनी सेनापति, तिआन गुआनसांन को तीन पत्र लिखे जिससे चीनी शान्त हो जाएं और आसन्न हिंसा का भय दूर हो। जिन परिस्थितियों में ये पत्र लिखे गए उनका विवरण देते हुए दलाई लामा ने अपनी जीवनी में लिखा, ''मैंने उसके सभी पत्रों का उत्तर समय की मोहलत पाने के लिए दिया – समय आवश्यक था जिससे दोनों पक्षों का गुस्सा ठण्डा पड़ जाए और मुझे ल्हासा के लोगों को शान्त करने का अवसर मिले। मेरा सबसे बड़ा दायित्व उस समय यही था कि मेरे निहत्थे लोगों और हथियार बन्द चीनी सेना के बीच विनाशकारी युद्ध न हो।'' [Dalai Lama, *ibid;* p.187]

दलाई लामा के प्रयत्नों के बावजूद भी इसके तुरन्त पश्चात् ल्हासा में लड़ाई छिड़ गई जिसके परिणाम तिब्बतियों के लिए भयंकर हुए। यह देखकर कि रक्तपात और मुठभेड़ों को रोकने के उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए हैं और चीनी दमन को कम करने के लिए उनका सहयोग मिलना संभव नहीं है दलाई लामा ने भारत आकर अपने लोगों को बचाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहायता जुटाने का निर्णय लिया। उन्होंने 17 मार्च की रात्रि को ल्हासा छोड़ दिया।

28 मार्च, 1959 को चीनी प्रधानमन्त्री चाऊ एन लाई ने राज्य परिषद के आदेश द्वारा तिब्बत सरकार को भंग करने की घोषणा कर दी। दलाई लामा और उनके मन्त्री भारत के रास्ते पर थे उन्होंने तुरन्त प्रतिक्रिया देते हुए कहा कि ल्हासा स्थित चीनी सरकार को तिब्बती जनता कभी स्वीकार नहीं करेगी। भारत में पहुँचकर दलाई लामा ने निर्वासित तिब्बत सरकार की स्थापना की और घोषणा की, ''मैं अपनी सरकार के साथ जहाँ कहीं भी रहूँगा तिब्बती लोग हमें तिब्बत सरकार के रूप में मान्यता देंगे।''

कुछ महीनों में ही दुर्गम मार्गों से होकर लगभग 80,000 तिब्बती भारत, नेपाल, भूटान और सिक्किम में पहुँच गए। अनेक लोग तो सीमा पर पहुँच ही नहीं पाए और रास्ते में मारे गए।

चीन सरकार द्वारा प्रकाशित श्वेत-पत्र में इन घटनाओं को इस रूप में अंकित किया गया है मानो ये घटनाएं मुट्ठी भर प्रतिक्रियावादियों का कारनामा था जिन्होंने सी०आई०ए० की सहायता से तिब्बत में विद्रोह करने का प्रयास किया और वहां लोगों ने दृढ़तापूर्वक इसका विरोध किया। श्वेत-पत्र कहता है कि दलाई लामा को बलपूर्वक भारत ले जाया गया। उनके अनुसार प्रतिरोध मात्र 7000 लोगों द्वारा किया गया जिसे मात्र दो दिनों में दबा दिया गया।

यह दृष्टिकोण शायद ही विश्वसनीय हो क्योंकि चीनी अधिकारयों ने स्वयं इसका खण्डन किया है। चीन की जन मुक्ति सेना की गुप्त रिपोर्टों में कहा गया है कि मार्च 1959 और अक्तूबर 1960 के बीच चीनी सेनाओं ने केवल मध्य तिब्बत में ही 87,000 तिब्बतियों को मौत के घाट उतारा। [*Xizang Xingshi he Renwu Jiaoyu de Jiben Jiaocai*, PLA Military District's Political Report, 1960.] सी०आई०ए० की तिब्बतियों को सीमित सहायता विद्रोह के पश्चात् ही मिलनी प्रारम्भ हुई। तिब्बतियों ने उसका स्वागत तो किया परन्तु उसका परिणाम कुछ नहीं निकला।

सारे सबूत यह सिद्ध करते हैं कि विद्रोह व्यापक स्तर पर था, लोकप्रिय था और विशाल था। जिस प्रकार का क्रूर दमन तिब्बत के सभी भागों में हुआ उससे यह बात सिद्ध होती है।

# 4

# परम्परागत तिब्बती समाज एवं भविष्य के प्रजातान्त्रिक तिब्बत की रूपरेखा

चीन ने सदा ही तिब्बत के परम्परागत समाज का विभत्स चित्र खींच कर तिब्बत पर अपने अधिकार का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया है। तिब्बत पर अपने आक्रमण और उसे गुलाम बनाने के अपने कृत्य को उन्होंने तिब्बत की ''मध्यकालीन सामन्ती मुजारेपन'' और ''दासता'' से ''मुक्ति'' का नाम दिया है।

आजकल इस मिथ्याकथन को बार बार दुहराकर चीन, तिब्बत में मानवाधिकारों के उल्लंघन एवं राजनैतिक अधिकारों के हनन का औचित्य सिद्ध कर रहा है ताकि तिब्बत में उसकी दमनकारी नीतियों को बदलने के लिए पड़ने वाले अन्तर्राष्ट्रीय दबावों का मुकाबला कर सके।

परम्परागत तिब्बती समाज निश्चय ही सर्वगुण संपन्न नहीं था और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता भी थी। दलाई लामा एवं अन्य नेताओं ने यह बात स्वीकार की है। यही कारण है कि शासन व्यवस्था संभालते ही दलाई लामा ने दूरगामी सुधार प्रारम्भ किए थे। परम्परागत समाज इतना बुरा भी नहीं था जितना कि चीन हमें विश्वास दिलाना चाहता है।

स्थिति कुछ भी हो परन्तु चीन द्वारा तथाकथित 'मुक्ति' का कोई औचित्य नहीं है। सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय कानून इस प्रकार की किसी बात का औचित्य नहीं मानता। किसी भी राष्ट्र को केवल इसलिए किसी दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करने, अधिकार जमाने, अपने अधीन करने अथवा अपना उपनिवेश बनाने का अधिकार नहीं है क्योंकि वहां की समाज व्यवस्था उसे अच्छी नहीं लगती। दूसरे मुक्ति के नाम पर चीन लोक गणराज्य ने और अधिक कष्टों को

बढ़ाया है। तीसरे आवश्यक सुधार किए जा रहे थे और तिब्बती स्वयं उन्हें लागू करने में सक्षम था।

'अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग' की 1960 की रिपोर्ट में उसकी न्यायिक जाँच समिति ने कहा, "चीन के यह आरोप कि उसके तिब्बत प्रवेश से पूर्व तिब्बती समाज को कोई मानवीय अधिकार प्राप्त नहीं थे तथ्यों को तोड़-मरोड़ और ऊहात्मक वर्णनों पर निर्भर है। तिब्बती विद्रोहियों के विरुद्ध बलात्कार, लूट और उत्पीड़न के आरोप मनगढ़न्त और अनेक कारणों से अविश्सनीय सिद्ध हुए हैं।" [*Tibet and Chinese People's Republic, Geneva, 1960*]

## परम्परागत समाज

सामाजिक गतिशीलता और सम्पत्ति के बँटवारे की दृष्टि से स्वतन्त्र तिब्बत एशिया के अनेक देशों से मुकाबला कर सकता था। दलाई लामा जो कि सांसारिक और आध्यात्मिक शक्ति का केन्द्र होता है, अवतार की प्रक्रिया द्वारा चुना जाता था ताकि दलाई लामा का पद वंशानुगत न बन जाए। अधिकांश दलाई लामा जिनमें तेरहवें और चौदहवें दलाई लामा भी आते हैं, तिब्बत के दूरस्थ गांवों में बसे कृषक परिवारों से आए थे।

हर प्रशासनिक पद पर तिब्बती भिक्षुक और सामान्य अधिकारी समान संख्या में नियुक्त थे। भली ही सामान्य अधिकारी वंशानुगत से पदों पर नियुक्त रहते थे परन्तु ये पद वंशानुगत नहीं थे तथा भिक्षुओं वाले पद सबके लिए खुले थे। भिक्षुक अधिकारियों का बड़ा हिस्सा आबादी के सामान्य लोगों में से आता था।

तिब्बत की भिक्षुक समाज-व्यवस्था अबाध सामाजिक गतिशीलता को निश्चित करती थी। तिब्बत के भिक्षुक संस्थाओं में प्रवेश सर्वसुलभ था तथा क्रमशः ऊपर उठने वाले अधिकांश भिक्षुक निर्धन परिवारों और खाम तथा आमदों के दूरस्थ क्षेत्रों से आते थे। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि मठों में अपनी योग्यता से किसी भी सीमा तक उन्नति करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। एक लोकप्रिय तिब्बती कहावत है, "यदि माँ का सपूत ज्ञानवान है तो गांदेन के स्वर्ण सिंहासन (तिब्बती बौद्ध में गेलुगपा सम्प्रदाय का उच्चतम पद) का अन्य कोई स्वामी नहीं है।"

कृषकों की जिन्हें कि चीनी श्वेत पत्र में बार-बार 'दास' कहा गया है, कानूनी स्थिति थी और प्राय कानूनी आधिकार-पत्रों में उनके अधिकार लिखे रहते थे जिनके लिए वे न्याय का दरवाजा खटखटा सकते थे। कृषकों को अपने स्वामियों पर मुकद्दमा चलाने का अधिकार था और उच्चतम अधिकारी तक अपील कर सकते थे।

सुश्री धोन्डुप छोडोन स्वतन्त्र तिब्बत के निर्धनतम परिवारों से आई थी। तिब्बत पर चीनी आधिपत्य विषयक अपने संस्मरण लिखते समय वे अपनी पुस्तक 'लाल झण्डा तले लोक कम्यून में जीवंन' *(Life in the Red Flag People's Commune)* में लिखती हैं, ''मैं उस वर्ग से हूँ जिसे आज चीनी दास कहते हैं, ......... हम परिवार में छह सदस्य थे। मेरा घर दोमंजिला था और उसके आंगन के चारों और परकोटा बना था। नीचे तल पर हम अपने पशु रखते थे। हमारे पास चार याक, 27 भेड़-बकरियां, दो गधे और साढ़े चार खैल (0.37 हेक्टेयर) का खेत था। हमें आजीविका कमाने में कोई भी परेशान नहीं होती थी। हमारे क्षेत्र में एक भी भिखारी नहीं था।''

तिब्बत के सम्पूर्ण इतिहास में जमींदारों द्वारा कृषकों से दुर्व्यवहार एवं उनका दमन कानून द्वारा निषिद्ध था। सातवीं शताब्दी के शासक सोंगचेन गाम्पो के समय से ही अनेक तिब्बती शासकों ने बुद्ध के दस सद्‌गुणों पर आधारित कानून प्रचारित किए। इनका सार यह था कि शासक को प्रजा के साथ माता-पिता जैसा व्यवहार करना चाहिए।

1909 में तेरहवें दलाई लामा ने जमींदारों के दुर्व्यहार के विरुद्ध सीधे उन तक अपील करने की आज्ञा जारी की। सच्चाई यह है कि क्रूर व्यवहार से तिब्बती समाज क्रुद्ध होता है। बौद्ध तिब्बतियों की करुणा में गहन आस्था न केवल मानव समाज के प्रति बल्कि पशु-पक्षियों के प्रति भी कठोर व्यवहार करने से उन्हे रोकती है।

तिब्बत में मृत्युदण्ड नहीं था तथा अंगभंग की सजा ल्हासा स्थित केन्द्रीय सरकार द्वारा ही दी जा सकती थी। 1898 में तिब्बत में देशद्रोह तथा षड़यन्त्र को छोड़कर अन्य अपराधों के लिए इस प्रकार की सजाएं देने के विरुद्ध कानून बनाया गया।

सारी भूमि सरकार की थी जो कि बौद्ध विहारों को और ऐसे व्यक्तियों को भूमि प्रदान करती थी जिन्होंने राज्य की सेवा की हो। इसके बदले में जमींदार, सरकार को राजस्व और सेवाएं प्रदान करते थे। सामान्य भू-स्वामी या तो राजस्व देते थे या एक पीढ़ी में से एक व्यक्ति सरकारी सेवा में अर्पित करते थे। बौद्ध विहार सरकार के लिए धार्मिक कार्य तो करती ही थी परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण उनका कार्य यह था कि वे राज्य के लिए स्कूलों, विश्वविद्यालयों का कार्य करती थी और साथ ही तिब्बती कला, शिल्प, औषध विज्ञान और संस्कृति के केन्द्रों का काम भी करती थी। बौद्ध विहारों की अनुशासित शैक्षिक संस्थाओं की भूमिका तिब्बती परम्पराओं और जीवन प्रणाली के लिए महत्त्वपूर्ण थी। विहारों में छात्रों की निःशुल्क शिक्षा और रहन-सहन की व्यवस्था की जाती थी। कुछ बड़े विहारों के पास बड़ी जागीरें थी और कुछ के पास दान का पैसा था जिसे वे व्यापार में लगाती थीं। कुछ विहारों के पास न जमीन थी और न पैसा। उन्हें भक्तों और संरक्षकों से व्यक्तिगत उपहार और दान मिलता था। प्रायः इनसे मिलने वाला धन भिक्षुओं की बड़ी संख्या के पालन के लिए अपर्याप्त होता था। अपनी आय को बढ़ाने के लिए कुछ बौद्ध विहार व्यापार करते थे और साहुकार बनकर ऋण प्रदान करते थे।

पुराने तिब्बत में भूमि का अधिकतर भाग किसानों के पास था जो कि सीधे सरकार के खजाने में राजस्व जमा करवाते थे। सरकार के पास खाद्यान्न भण्डार इसी से बनता था जिसे बौद्ध विहारों, सेना और गैर जमींदार अधिकारियों को बाँटा जाता था। कुछ श्रम के रूप में राजस्व देते थे, कुछ अधिकारियों और कभी-कभी बौद्ध विहारों के लिए परिवहन व्यवस्था जुटाते थे। किसानों की भूमि पैतृक सम्पत्ति की तरह हस्तान्तरित हो सकती थी। वह अन्य लोगों को इसे पट्टे पर दे सकता था अथवा गिरवी रख सकता था। उसे जमीन से बेदखल तभी किया जा सकता था जब वह राजस्व न दे अथवा श्रमदान न करे। राजस्व कम ही होता था। व्यवहार में वह भू-स्वामी ही होता था और सरकार को दिया जाने वाला राजस्व भूमि कर के रूप में होता था जिसे किराए की शक्ल में न देकर वस्तुओं के रूप दिया जाता था।

तिब्बती जनसंख्या का छोटा सा हिस्सा विशेषकर ऊ-चांग प्रांत में मुजारों के रूप में भी था। उनके पास अभिजात वर्ग अथवा बौद्ध विहारों की दी जमीनें थी। वे या तो भू-स्वामियों को उत्पाद के रूप में कर देते थे या फिर उनके यहां अपने परिवार के किसी सदस्य को भूमि-मजदूर अथवा घरेलू नौकर के रूप में भेजते थे। इस मुजारों में से कुछ तो राज्य सचिव के शक्तिशाली पद तक भी पहुँचे। (इसी कारण से चीनियों द्वारा उन्हें सामन्तों का जासूस करार दिया गया।) इनके परिवारों के अन्य सदस्य पूरी तरह स्वतन्त्र थे। उन्हें कोई भी व्यवसाय अपनाने, बौद्ध विहार में प्रवेश करने अथवा अपनी खेती करने का अधिकार था। भले ही वे मुजारे थे परन्तु उन्हें जमींदार मनमर्जी से भूमि से बेदखल नहीं कर सकते थे। कुछ मुजारे पर्याप्त समृद्ध थे।

वर्तमान चौदहवें दलाई लामा ने दूरगामी प्रशासनिक एवं भू-सुधारों को लागू करने का प्रयास किया। वे चाहते थे कि बौद्ध विहारों और जमींदारों की व्यक्तिगत विशालकाय जागीरों को सरकारी अधिकार में लेकर लोगों में बांट दिया जाए। उन्होंने एक विशेष भू-सुधार समिति बनाई थी जिसने जमीनों पर कर कम करने का सुझाव दिया। समिति को अधिकार दिया गया कि वह व्यक्तिगत शिकायतों का निराकरण करे जो कि स्थानीय अथवा जिला स्तर के अधिकारियों के विरुद्ध लोगों द्वारा की जाती थी। इस समिति द्वारा ऋण-मुआफी के सुझाव को भी स्वीकार कर लिया गया। ऋण ग्रस्त कृषकों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया: जो संचित ब्याज अथवा मूल को भी नहीं दे सकते थे, उन्हें ऋणमुक्त घोषित किया गया; वे जो कि अपनी वार्षिक आय में से ब्याज नहीं दे सकते थे परन्तु जिनके पास मूल चुकाने के लिए संचित पूंजी थी, उन्हें किस्तों में मूल चुकाने को कहा गया, और तीसरे वे जो गत वर्षों से धनाढ्य बन गए थे उन्हें ऋण और मूल चुकाने के लिए कहा गया। दलाई लामा ने आज्ञा प्रसारित की कि भविष्य में सरकार की विशेष अनुमति के बिना आवागमन के लिए साधन न मांगे जाएं। आवागमन के लिए दी जीने वाली सेवाओं का शुल्क भी उन्होंने बढ़ा दिया।

स्वतन्त्र तिब्बत में अकाल और भुखमरी कभी सुनी नहीं गई। यह ठीक है कि कई बार लगातार फसलें खराब होती या कम उपज होती थी। परन्तु

लोग जिला प्रशासकों, बौद्ध-विहारों, अमीर किसानों और कुलीन लोगों के पास संचित अन्न-भण्डारों से आसानी से अनाज उधार ले सकते थे।

1950 के पश्चात् चीनी सैनिकों और नागरिकों को सरकारी अन्न-भण्डारों पर पाला गया तथा तिब्बती जनता को भी कम से कम कीमत पर अपना संचित अन्न-भण्डार बेचने के लिए विवश किया गया। चीन द्वारा "मुक्ति" का वास्तविक अर्थ था सबके लिए समान निर्धनता।

चीनी कारावासों में 33 वर्ष तक कष्ट भोगने के पश्चात् 1992 में वहां से भाग निकलने में समर्थ होने वाले पालदेन ग्याछो ने सारगर्भित ढंग से लिखा है, "चीनी निश्चय ही अमीरों को गरीब बनाने में सफल हुए। परन्तु उन्होंने गरीबों की सहायता नहीं की। गरीब और गरीब होते गए और तिब्बत चम्पा (सत्तू) मांगने वाले भिखारियों का देश बन गया।"

ह्यू रिचर्डसन ने अपनी पुस्तक, "तिब्बत और उसका इतिहास" *(Tibet and its History)* में लिखा है, "यहाँ तक कि साम्यवादी लेखकों को भी यह स्वीकार करना पड़ा कि 1949 पूर्व के तिब्बत में अमीर और गरीब में विशेष अन्तर नहीं था।" वास्तव में जब हू-याओबांग ने जो कि साम्यवादी दल का पूर्व सचिव रहा था, 1980 में मध्य तिब्बत में निर्धनता की सीमा को देखा तो उसने कहा कि जीवन स्तर कम से कम 1959 के स्तर तक तो लाना ही चाहिए।

## प्रजातान्त्रिक सुधार

1959 में तिब्बत से पलायन के तुरन्त पश्चात् दलाई लामा ने भारत में अपनी सरकार पुनः स्थापित की तभी से उन्होंने अनेक प्रजातान्त्रिक सुधार प्रारम्भ कर दिए। लोगों द्वारा चुनी गई सभा जिसे 'निर्वासित संसद' कहा गया गठित की गई। 1961 में दलाई लामा ने भविष्य के तिब्बत का संविधान तैयार किया और तिब्बतियों की उसके बारे में राए मांगी।

1963 में भविष्य के तिब्बत के लिए संविधान की विस्तृत रूपरेखा तैयार की गई। पर्याप्त विरोध के रहते भी दलाई लामा ने संविधान में यह धारा रखने का पक्ष लिया कि जब राष्ट्रीय असेम्बली उच्चतम न्यायलय से परामर्श करते हुए दो तिहाई मत से यह स्वीकार कर ले कि सर्वोच्च राष्ट्र हित में दलाई लामा की शक्तियों को प्रतिशासकों की एक समिति द्वारा प्रयोग किया जाए तो ऐसा ही होना चाहिए।

10 मार्च 1969 को दलाई लामा ने यह घोषित किया कि स्वाधीनता प्राप्ति के समय तिब्बती लोग ही यह निर्णय करें कि उन्हें कैसी सरकार चाहिए।

1990 में 'तिब्बती जन प्रतिनिधि सभा (निर्वासित संसद) के सदस्यों' की संख्या 12 से बढ़ा कर 46 कर दी गई। इसे और अधिक संवैधानिक शक्तियां दी गई जैसे इसे कालोन (मंत्री) नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। यह अधिकार पहले सीधे दलाई लामा के हाथ में था। 'सर्वोच्च न्यायिक कमीशन' की स्थापना लोगों की प्रशासन के विरुद्ध शिकायतों के निवारण के लिए की गई।

फरवरी 1992 में दलाई लामा ने 'भविष्य के तिब्बत की राजनीतिक रूपरेखा और इसके संविधान की मुख्य विशेषताएं' विषयक प्रपत्र जारी किया जिसमें उन्होंने कहा, "भविष्य में तिब्बत सरकार में उनकी अपनी कोई भूमिका नहीं होगी, दलाई लामा के परम्परागत राजनैतिक स्थान को पाने का प्रयत्न करना तो दूर की बात है।" दलाई लामा ने कहा कि भविष्य में तिब्बत की सरकार वयस्क मताधिकार द्वारा लोगों द्वारा चुनी जाएगी।

दलाई लामा ने यह भी घोषणा की कि संविधान लागू होने और दमनकारी चीनी सेना के तिब्बत छोड़ने के बीच के समय में तिब्बत का प्रशासन इस समय तिब्बत में कार्यरत तिब्बती अधिकारियों के ही हाथ में रहेगा। इस संक्रमण काल में एक अन्तरिम अध्यक्ष नियुक्त कर दिया जाएगा जो कि दलाई लामा की सारी शक्तियों का प्रयोग करेगा। निर्वासित तिब्बत-सरकार का अस्तित्व अपने आप समाप्त हो जाएगा।

भविष्य के तिब्बत की राजनैतिक व्यवस्था की रूपरेखा में कहा गया "भविष्य का तिब्बत शान्तिप्रिय देश होगा जो कि अहिंसा के सिद्धान्त पर चलेगा। यहां प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था लागू की जाएगी जो कि स्वच्छ, स्वस्थ और सुन्दर पर्यावरण बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध होगी। तिब्बत पूरी तरह सेना रहित राष्ट्र होगा।"

इस प्रकार तिब्बत का संघर्ष परम्परागत व्यवस्था को जीवित करने के लिए नहीं है जैसा कि चीनी प्रचार करते हैं। चीन की यह निरन्तर कोशिश कि तिब्बत समस्या को दलाई लामा के व्यक्तित्व से सीधे जोड़ दिया जाए। वास्तव में यह मूल समस्या पर पर्दा डालने का षड़यन्त्र है और यह मूल समस्या है जनता का स्थायी राष्ट्रीय संघर्ष।

# 5
# मानवाधिकार

तिब्बत पर चीन के आक्रमण और अधीनहन के परिणामस्वरूप 12 लाख तिब्बती मारे जा चुके हैं। एक भी तिब्बती परिवार ऐसा नहीं मिलेगा जिसक़ा एक भी सदस्य मारा न गया हो अथवा बन्दी न बनाया गया हो। नेशनल पीपल्स कांग्रेस के भूतपूर्व उप-अध्यक्ष डापो डवांग जिग्मे के पुत्र, जिग्मे डापो के अनुसार, "1959 और 1969 के दमन के पश्चात् हर तिब्बती परिवार किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ है।" ये तथ्य चीन के उन 'प्रजातान्त्रिक सुधारों' के विषय में कहे जाते हैं जिनके विषय में चीन का दावा है कि ये तिब्बत की "अन्धकार ग्रस्त, सामन्ती एवं शोषणपरक समाज व्यवस्था" को मिटाने के लिए थे।

स्वतन्त्र तिब्बत निश्चय ही एक सर्व गुण सम्पन्न मानव समाज का प्रतिरूप नहीं था परन्तु वह निश्चय ही चीनी आधिपत्य वाले तिब्बत की तरह शोषणपरक नहीं था। ल्हासा स्थित इसके दो कारावासों में कभी भी तीस-तीस से अधिक बन्दी नहीं रहे। चीनी आधिपत्य के पश्चात् पूरा तिब्बत कारावासों के जाल तथा श्रमिक शिविरों में बदल गया है। ऐसे भी समाचार मिले हैं कि बन्दियों की संख्या को सीमा में रखने के लिए उनकी हत्याएं की जाती रही हैं।

फिर भी चीन यह दावा करता रहा है कि उसके अधीन तिब्बत की "मुक्ति" के पश्चात् तिब्बतियों को पहले से अधिक स्वाधीनता और स्वतंत्रता मिली है। आइए तथ्यों का विश्लेषण करें।

## 1949-1979 : हत्याएं और विनाश

चीनी स्रोतों के अनुसार चीन की जन मुक्ति सेनाओं ने पूर्वी तिब्बत के विभिन्न क्षेत्रों में 7 और 25 अक्तूबर 1950 के बीच 5,700 से अधिक तिब्बती

सिपाहियों की हत्या की और 2,000 को बन्दी बनाया। [*A Survey of Tibet Autonomous Region*, Tibet People's Publishing House, 1984]

सामूहिक हत्याओं, यातनाओं, बौद्ध मठों पर बमबारी तथा घुमक्कड़ कबीलों के समूल विनाश सम्बन्धी प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध हैं। इनमें से अनेक प्रमाण 1960 में अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग द्वारा तिब्बत पर प्रकाशित रपट में उल्लिखित है।

चीन के एक गुप्त दस्तावेज़ के अनुसार चीन की जन मुक्ति सेनाओं ने गानल्हो, आम्दो में 996 विद्रोहों को कुचलते हुए 1952 से 1958 तक 10,000 तिब्बतियों की हत्या की। [*Work Report of the 11th PLA Division*, 1952-1958] इसी प्रकार आम्दो के एक और क्षेत्र गोलोक की जनसंख्या 1956 में 1,30,000 से घटकर 1963 में 60,000 ही रह गई। [*China Spring*, June 1986]

इसी क्षेत्र के विषय में बात करते समय पंचेन लामा ने कहा, "यदि चिंगहाई में हुए अत्याचारों पर फिल्म बना कर प्रदर्शित की जाए तो यह दर्शकों को हिला देगी। गोलोक क्षेत्र में अनेक लोग मारे गए और उनकी लाशें पहाड़ से लुढ़का कर गढे में डाल दी गईं। सिपाहियों ने मृतकों के परिवारजनों को खुशियां मनाने के लिए विवश किया क्योंकि विद्रोही मारे जा चुके थे। उन्हें मृत शरीरों पर नाचने के लिए विवश किया गया इसके तुरन्त पश्चात् उन्हें भी मशीनगनों से भून दिया गया।" *[बीजिंग में नेशनल पीपल्स कांग्रेस की उपसमिति की एक बैठक में पंचेन लामा का भाषण जिसमें तिब्बत की स्थिति पर प्रकाश डाला, मार्च 28, 1987]*

पंचेन लामा ने विशेष रूप से अपने भाषण में कहा, "आम्दो और खाम के लोगों को अकथ्य अत्याचारों से गुजरना पड़ा। उन्हें दस और बीस के समूहों में मारा गया......... ऐसे कार्यों ने लोगों के मन पर गहरे घाव लगाए हैं।"

10 मार्च 1959 को ल्हासा के विद्रोह के परिणाम स्वरूप जो दमन कार्य चला उसमें तीन दिन में दस से पन्द्रह हजार तक तिब्बती मार डाले गए। 1960 की चीनी जन मुक्ति सेना की जिला स्तरीय राजनीति विभाग की रिपोर्ट के अनुसार मार्च 1959 और अक्तूबर 1960 के बीच केवल मध्य तिब्बत में

ही 87,000 तिब्बतियों की हत्या कर दी गई। [*Xizang Xingshi he Renwu Jiaoyu de Jiben Jiaocai*, 1960]

## कारावासों में मृत्यु

श्रमिक बन्दी शिविरों और जेलों से निकल कर आए लोगों के द्वारा दिए प्रमाणों के आधार पर यह पता चलता है कि 70% बन्दियों की मृत्यु हो गई। उदाहरण के लिए उत्तर तिब्बत के मैदानों झांग छालाखा में पांच कारावासों में 10,000 से अधिक बन्दी थे जिन्हें बोरेक्स निकालने और ढोने का काम दिया गया। इस कारावास में रहे प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यहां प्रति दिन भूख, मारपीट और काम की अधिकता से 10 से 30 तक लोग मर जाते थे, एक वर्ष में 8,000 से भी अधिक लोग मर गए। इसी प्रकार ल्हासा डछेन जल-विद्युत ऊर्जा स्टेशन के निर्माण में जिसके निर्माण का श्रेय चीनी जन मुक्ति सेना लेती है, प्रतिदिन तीन चार मृतक बन्दियों को निकट की नदी में फैंका जाता था या जलाया जाता था।

उदाहरण के लिए पूर्वी तिब्बत के विषय में, 1960-62 के बीच दार्चेडो जिला में स्थित एक बड़ी खान में 12,019 बन्दी श्रमिक मारे गए थे। यह सूचना इस खान में रही श्रीमती अधी तपे ने दी है जो कि खाम क्षेत्र में न्यारोंग की रहने वाली थी।

तिब्बत की निर्वासित सरकार द्वारा एकत्र सूचनाओं के अनुसार 12 लाख लोग निम्न ढंग से 1949 से 1979 के बीच मारे गए:

| मृत्यु का ढंग | ऊ-चांग | खाम | आम्दो | कुल |
|---|---|---|---|---|
| जेल में उत्पीड़ित | 93,560 | 64,877 | 14,784 | 173,221 |
| फाँसी दी गई | 28,267 | 32,266 | 96,225 | 156,758 |
| युद्ध करते मारे गए | 143,253 | 240,410 | 49,042 | 432,705 |
| भूख से मरे | 131,072 | 89,916 | 121,982 | 342,970 |
| आत्म-हत्या | 3,375 | 3,952 | 1,675 | 9,002 |
| तिल-तिल कर मरे | 27,951 | 48,840 | 15,940 | 92,731 |
| **कुल** | **427,478** | **480,261** | **299,648** | **1,207,387** |

## तिब्बत में मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति

सितम्बर 1976 में माओ-चे-तुंग की मृत्यु के पश्चात् चीनियों की नीतियों में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन का मुख्य स्वर आर्थिक उदारीकरण, खुलेपन और कुछ हद तक राजनीतिक बन्दियों के प्रति नर्मी का था।

परन्तु इस उदारीकरण और खुलेपन से तिब्बत में राजनैतिक आजादी के प्रश्न पर चीन के दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं आया। 1982 में 115 तिब्बती राजनैतिक कार्यकर्त्ता पकड़े गए और उन्हें 'काला बाजारिए' तथा 'भ्रष्ट' करार दिया गया। इसके पश्चात् और अधिक लोग बन्दी बनाए गए और सजाएं दी गईं। नवम्बर 1983 के अन्त तक केवल ल्हासा के कारावास में 750 राजनैतिक कार्यकर्त्ता बन्दी थे।

27 सितम्बर 1987 को 200 से अधिक तिब्बतियों ने ल्हासा में प्रदर्शन किया। प्रथम अक्तूबर 1987 और 5 मार्च 1988 के प्रदर्शनों सहित अन्य प्रदर्शनों को कुचलते हुए चीनियों ने गोलियां चालईं जिनसे अनेक घटनास्थल पर मरे और गम्भीर रूप से घायल हुए और लगभग 2,500 निहत्थे प्रदर्शन कारी बन्दी बनाए गए।

जुलाई 1988 में चीन के सुरक्षा प्रमुख क्योशी ने "तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र" का दौरा करते हुए कहा, "चीन के विरुद्ध हर विद्रोह का 'कठोरतापूर्ण दमन' किया जाए।" [UPI, July 20, 1988]

इस नीति पर एकदम अमल किया गया। 10 दिसम्बर 1988 को जोखांग में प्रदर्शनकारियों का दमन करते हुए एक पश्चिमी प्रत्यक्षदर्शी पत्रकार के अनुसार एक चीनी अफसर को कहते हुए सुना गया, "तिब्बतियों की हत्या कर दो।" उस दिन लगभग 15 लोग मरे, 150 गम्भीर रूप से घायल हुए और अन्य अनेक बन्दी बनाए गए।

परन्तु इसके पश्चात् भी 5 मार्च 1989 से तीन दिन तक ल्हासा में एक बार फिर उथल-पुथल हुई और प्रदर्शनकारी तिब्बती झण्डों को फहराते हुए, नारे लगाते हुए तिब्बत की आजादी की मांग कर रहे थे। दमन के समय स्वचालित शस्त्रों से घरों पर भी गोलियां दागी गईं। अनुमान लगाया गया कि 80 से 400 तक लोग मारे गए। चीन की सरकारी घोषणा के अनुसार मात्र 11

लोग मरे। ल्हासा स्थित चीनी पत्रकार तॉन दिक्षयान के अनुसार लगभग चार सौ तिब्बतियों की हत्या की गई, कई हज़ार घायल हुए और तीन हजार बन्दी बनाए गए। [*Events in Lhasa, March 2nd-10th 1989*, Tang Daxian, London, TIN, June 15, 1990] 7 मार्च 1989 की मध्यरात्रि से ल्हासा में अधिकारिक रूप से मार्शल-लॉ लगा दिया गया।

1 मई 1990 को इस घटना के लगभग एक वर्ष पश्चात् चीन ने मार्शल-लॉ हटाने की घोषणा कर दी। परन्तु प्रथम आस्ट्रेलियन मानवाधिकार मिशन, जिनको जुलाई 1991 में तिब्बत जाने की अनुमति प्राप्त हुई, ने कहा, ''1 मई 1990 से मार्शल-लॉ भले ही सरकारी रूप से हटा लिया गया है परन्तु यह वास्तविक रूप से अभी भी पूरी तरह लागू है, नाम के लिए ही हटा है।'' एमनेस्टी इन्टरनैशनल ने भी अपनी 1991 की रिपोर्ट में लिखा, ''पुलिस और सेना को मनमर्जी से किसी को भी कैद करने और रोकने के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वह भी बिना मुकद्दमा चलाए।''

तिब्बत पर अपने अधिकार की 40वीं वर्षगांठ उत्सव की तैयारी में, 10 अप्रैल 1991 को 146 ''अपराधियों'' को पकड़ा गया तथा इसके पश्चात् 'सार्वजनिक-दण्ड' सभाओं में अन्य लोगों को बन्दी बनाने की घोषणा की। इस उत्सव के अवसर पर पूरे ल्हासा में कर्फ्यू लगा दिया गया।

फरवरी 1992 में दस-दस चीनी अधिकारियों के समूहों ने ल्हासा के घरों में छापे मारे और षड़यन्त्रकारी सामग्री रखने के अपराध में जिसमें दलाई लामा के चित्र, टेप, उनके उपदेशों की पुस्तकें आदि भी आती थी, लगभग 200 से अधिक व्यक्ति पकड़े गए। दमन के सारे साधनों को अपनाने पर भी 1987 के बाद पूरे तिब्बत में प्रदर्शन होते रहे। प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर कहा जा सकता है कि 27 सितम्बर 1987 से 1993 के अन्त तक पूरे तिब्बत में लगभग छोटे बड़े 200 प्रदर्शन हुए। मार्च 1989 के रक्तिम चीनी दमन की यादों के रहते भी बड़ी संख्या में तिब्बती 24 मई 1993 को सड़कों पर उतर आए। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है जिनमें भ्रमणार्थी भी थे कि लगभग 10,000 लोग सड़कों पर आ गए। प्रदर्शन पूरा दिन चला और अगले दिन शाम को जब प्रदर्शनकारी घरों को जा रहे थे, उन्हें बड़ी बेरहमी से कुचल दिया गया।

गत कुछ वर्षों से तिब्बत के ग्राम-प्रान्तों से प्रदर्शनों के निरन्तर बढ़ने की खबरें आ रही है। खाम और आमदो में प्रदर्शनों और दीवार पोस्टरों में वृद्धि हुई है। कारज़े, राज्ञा, कीरती, चावा पोम्दा, छाम्दो, रिकोंग (चीनी टोंगरेन), छाबचा (चीनी गुंघे), ज़ोंगे आदि से भी प्रदर्शनों और दीवार पर चीन विरोधी पोस्टर चिपकाने की अभियानों में भाग लेने के कारण बहुत से तिब्बतियों को श्रम-शिविरों और कारावास में डालने के समाचार है।

'एमनेस्टी इन्टरनैशनल' की दृष्टि में जिन मानवाधिकारों का हनन किया जा रहा है उनमें आत्मा की आवाज पर चलने वालों को कैदी बनाना, अन्य राजनैतिक बन्दियों को अन्यायपूर्ण मुकद्दमों में फंसाना, पीड़ा देकर और दुर्व्यवहार करके नजरबन्द रखना, मृत्यु दण्ड देना तथा न्याय-प्रक्रिया को दर किनार कर सजाएं देना आते हैं। तिब्बत में संवैधानिक और कानूनी रुकावटें मूलभूत स्वतन्त्रता को बाधित करती हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के मानवाधिकार रक्षक प्रावधानों की कमी है। [*People's Republic of China: Amnesty International's Concerns in Tibet*, Amnesty International, London, January 1992, ASA 17/02/92, summary page]

''चीनी शासन के प्रति असंतोष के ऐसे सभी प्रदर्शन (अर्थात प्रदर्शन और राजनैतिक विरोध)-चाहे शान्तिपूर्ण हों अथवा अन्य तरीकों से, शासन द्वारा, 'अवैध पृथकतावादी कार्यों' के रूप में माने जाते हैं और जिन्होंने इनमें भाग लिया या इनका नेतृत्व किया उन्हें अधिकाधिक ताकत और कठोरता से दबाया गया। 'क्रूर दमन' का ही तिब्बत में आजकल बोलबाला है।'' [*Merciless Repression: Human Rights in Tibet,* Asia Watch, Washington, DC, May 1990, p.3]

1993 की रिपोर्ट में 'एमनेस्टी इन्टरनेशनल' ने अपना कथन जारी रखते हुए कहा, ''तिब्बत में राजनीतिक रूप से सक्रिय लोगों को जेलों में डाला जा रहा है। 200 से अधिक राजनैतिक कैदी जिनमें से 100 के लगभग 'आत्मा की आवाज' के कारण बन्दी हैं आज भी तिब्बत में हैं। इनमें तिब्बती बौद्ध भिक्षुक और भिक्षुणियां हैं जो कि शान्तिपूर्ण ढंग से तिब्बत की आज़ादी का प्रचार करते थे और साधारण तिब्बती हैं जिनके पास से राष्ट्रवादी सामग्री

पकड़ी गई। कुछ को अन्यायपूर्ण मुकद्दमों के पश्चात् जेलों में डाल दिया गया और कुछ 'श्रम द्वारा सुधार शिविरों' में बन्दी हैं जबकि उन पर औपचारिक मुकद्दमा चलाए बिना उन्हें जेल में डाला गया है।"

तिब्बत में मानवाधिकारों का हनन सर्वत्र व्याप्त है। प्राप्त साक्ष्यों से सिद्ध हो जाता है कि चीन अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा विहित सभ्य-व्यवहार के सभी सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है। इनमें से अधिकांश के पालन की शपथ चीन ने खाई है जैसे कि 'संयुक्त राष्ट्र संघ की उत्पीड़न, क्रूर व्यवहार और अमानवीय अथवा पशु तुल्य व्यवहार अथवा सजा न देने की कान्वेंशन' का अनुमोदन चीन ने किया है तथा राष्ट्रों के सामान्य कानूनों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र आदि की स्वीकृति भी चीन ने दी है।

## मनमाना बन्दीकरण, काल-कोठरी में डालना, गायब करना, न्याय प्रक्रिया अपनाए बिना सजाएं देना

एमनेस्टी इन्टरनेशनल की 1990 की रिपोर्ट में मनमाने ढंग से लोगों को जेल में डालने, काल कोठरी में डालने, गायब करने और हाथों-हाथ मृत्यु दण्ड देने के प्रमाण दिए गए हैं। इसका कथन है कि, "मार्च में ल्हासा में मार्शल लॉ लगाने के पश्चात् 1000 से अधिक लोगों को जेल में डाल दिया गया जिनमें धर्मात्मा (आत्मा के बन्दी) भी थे और कुछ को हाथों हाथ मृत्यु दण्ड दिया गया।" इसने यह भी संकेत किया कि, "1989 में मानवाधिकारों के हनन के पुख्ता प्रमाण आते रहे जिनमें असंख्य लोगों को मनमाने ढंग से कैद करने का प्रमाण, बिना मुकद्दमे के लम्बी अवधी तक नजर बन्द करने और उत्पीड़ित करने के प्रमाण हैं।"

तिब्बत में चीनी शासन के अधीन बन्दियों को बन्दी बनाने के कारणों को बताने का प्रावधान नहीं है और न ही उन्हें न्याय की शरण लेने का हक है। कैद करने का अधिकार पत्र शायद ही कभी जारी किया जाता हो या पेश किया जाता हो।

किसी भी क्रिया-कलाप को कैद करने और जेल में डालने का आधार बनाया जा सकता है। तिब्बतियों को विदेशियों से बात करने के लिए कैद किया जाता है, राष्ट्रभक्ति के गीत गाने, दीवारों पर पोस्टर लगाने, दलाई लामा

की आत्म कथा रखने, उनके दृश्य अथवा श्रव्य टेप रखने, चीन के विरुद्ध प्रदर्शन में मरे प्रदर्शनकारियों की सूची बनाने तथा चीन के राष्ट्रीय दिवस पर तिब्बती पोशाक पहनने की सलाह देने अथवा इसका 'षड़यन्त्र' करने को भी कारण माना जा सकता है। अनेक बार तो किसी भी कारण के न होने पर भी तिब्बतियों को जेल में डाला गया है।

काल-कोठड़ियों में डालना तो रोजमर्रा का काम है। प्रायः बन्दी व्यक्ति के सम्बन्धियों को ही उसे खोजने को विवश होना पड़ता है। [*Defying the Dragon: China and Human Rights in Tibet*, LAWASIA and TIN, London, March 1991, p. 33]

किसी व्यक्ति को बन्दी बनाने के कई दिनों, महीनों अथवा अनेक बार वर्षों बाद उसे जेल में डालने की पुष्टि की जाती है। बन्दी बनाने के प्रारम्भिक दौर में व्यक्ति के सम्बन्धियों को सूचित करने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उसे ''विधिवत'' कैद किया नहीं माना जाता।

1993 में तिब्बत के तीनों प्रान्त ऊ-च़ांग, खाम और आम्दो से बड़े पैमाने पर लोगों को बन्दी बनाया गया। ग्रामीण क्षेत्रों से बड़े पैमाने पर लोगों को बन्दी बनाने के समाचार मिले। अभी तक संकलित आंकड़ों के अनुसार उस वर्ष 240 से अधिक लोग कैद किए गए और यह संख्या नए समाचार मिलने से निरन्तर बढ़ती जा रही है। आम्दो के ही छ़ो-डोन क्षेत्र में जिसे चीनी चिंगहाई कहते हैं विभिन्न सूत्रों से सूचना मिली कि जुलाई और सितम्बर 1993 के बीच 80 तिब्बती कैद किए गए।

मई 1993 में चीनी अधिकारियों ने मात्र दो को कैद करने की बात मानी और अपने झूठ को आगे बढ़ाते हुए कहा कि तीसरे को मुक्त कर दिया गया था। अधिकांश लोगों को रात को या संध्या के पश्चात् पकड़ा जाता था। अनेकों को छोटे-छोटे शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों में भाग लेते हुए पकड़ा गया। कुछ को उनकी भारत यात्रा के तुरन्त पश्चात् पकड़ लिया गया।

## यंत्रणा विधियां: नई और क्रूर

तिब्बत में कैदियों से पूछताछ का एकमात्र ज्ञात तरीका यंत्रणा देना है। चीन

द्वारा 12 दिसम्बर 1986 में 'यंत्रणा के विरुद्ध कन्वेंशन' को स्वीकार करने और 1988 में उसके तथाकथित लागू करने की घोषणा से वस्तुस्थिति नहीं बदली।

यंत्रणा के तरीकों और सामान के विषय में चीनी कारावासों में यंत्रणा भोगने वाले पूर्व कैदियों ने वर्णन किए हैं। इनमें हाथ में आने वाले किसी भी पदार्थ से पीटना जिसमें बिजली के छड़, ठुडे मारने, घूसे मारने, राईफल के हत्थे से पीटना, डण्डों और लोहे के छड़ आदि शामिल हैं। जेल में कैदियों से अपराध स्वीकार करवाने के लिए क्रूर और अमानवीय तरीकों को अपनाया जाता है। इन यंत्रणाओं में अंग-भंग करना, पालतू कुत्तों को कैदियों पर छोड़ना, बिजली की छड़ों का प्रयोग करना (विशेषकर महिला बन्दियों पर इन छड़ों का प्रयोग होता है जो कि अत्यधिक विकृत और अमानवीय ढंग से होता है।), सिग्रेट द्वारा जलाना तथा बिजली के झटके देना शामिल है।

पूर्वी तिब्बत से हाल ही में आए एक तिब्बती शरणार्थी जो कि चीन के सार्वजनिक सुरक्षा ब्यूरो का सदस्य था, ने यंत्रणा देने के 33 तरीकों को गिनवाया है। यंत्रणा के नए तरीके निरन्तर खोजे जाते हैं जिसकी पुष्टि कम से कम एक पार्टी दस्तावेज से होती है। [*To Control Others, First Control Yourself,* H'o Phan in TAR Internal Party Study Document, in Tibetan, issue No. 2, September 1989, p.21 ff.]

मई 1993 में यंत्रणा की एक शिकायत में बताया गया कि एक गर्भवती महिला को बारह घण्टे खड़े रखा गया, सोने नहीं दिया गया जिसके परिणाम स्वरूप उसका समय से पहले गर्भपात हो गया।

## कैदियों को अपराधी माना जाता है

चीन की न्यायिक व्यवस्था में मूल भूत सुरक्षा-जब तक संदेह से परे आपका अपराध सिद्ध नहीं होता तब तक आप निर्दोष हैं-विद्यमान ही नहीं है।

तिब्बत में चीनी कानून के अनुसार किसी बन्दी को उसे बन्दी बनाने के कारण बताना नियम नहीं बल्कि अपवाद है। बन्दी बनाने के कई दिनों के पश्चात् ही उसकी पुष्टि की जाती है, या फिर मुकद्दमा चलाने से पहले ऐसा किया जाता है।

राजनैतिक बन्दियों को उनके तथाकथित अपराधों के मुकाबले में बहुत अधिक सजा दी जाती है। कैदियों को लम्बे समय तक बिना अपराध बताए कैद में रखा जाता है और कभी कभार ही उन पर मुकद्दमा दर्ज होता है।

प्रशासनिक नजरबन्दी के आदेश बिना किसी न्यायिक देखरेख के पुलिस अथवा स्थानीय अधिकारियों द्वारा की जाती है। पुलिस को प्रशासनिक नजरबन्दी के व्यापक अधिकार प्राप्त हैं और वह कुछ दिनों से कुछ वर्ष तक भी बिना मुकद्दमा चलाए नजरबन्द कर सकती है। भले ही चीनी प्रशासनिक प्रविधि में अपील के अधिकार का प्रावधान है परन्तु व्यावहारिक रूप से इसे पाना असम्भव बना दिया जाता है।

आत्म रक्षा के लिए पर्याप्त समय अथवा सुविधाएं पाने का कोई मार्ग नहीं है और न ही खुले न्यायालय में सुने जाने का अधिकार है। जब आत्मरक्षा की अपील का अधिकार दिया जाता है तब भी अपने को निरपराध सिद्ध करवाने का अधिकार नहीं है बल्कि अपनी सजा कम करवाने मात्र की अपील की जा सकती है। न्यायधीशों का दायित्व इतना है कि प्रशासकों द्वारा निश्चित दण्डों की घोषणा करें। इसलिए यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि तिब्बती न्यायधीशों को ''दण्डाधिकारी'' कहते हैं।

## चलने फिरने की आजादी नहीं

संयुक्त राष्ट्र संघ के 'मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र' की धारा 13 का स्पष्ट उल्लंघन करते हुए चीनियों ने तिब्बतियों पर अपने ही देश में घूमने फिरने पर अनेक तरह की पाबन्दियां लगा रखी हैं। लोगों को एक निश्चित स्थान पर अपने को पंजीकृत करवा कर रहना होता है और वहीं उन्हें राशन मिलता है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर थोड़े समय पर जाने के लिए भी सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है।

ऐसे अनेक उदाहरण है जब ल्हासा में रहने वाले तिब्बतियों को अपने पैतृक गांवों में जाने के लिए विवश किया। 23 मई 1991 को आयोजित तिब्बत पर चीनी आधिपत्य की चालीसवीं वर्षगांठ की तैयारी के समय ऐसा किया गया। 5-7 मार्च 1989 के प्रदर्शनकारियों पर क्रूर दमन के पश्चात्

40,000 तिब्बतियों को ल्हासा से बाहर निकाल दिया। अगस्त 1992 में चीनी अधिकारियों ने पूर्वी ल्हासा के अस्पताल के पीछे वाले मैदान से 6,000 तिब्बती गृह विहीनों तथा तीर्थ यात्रियों को निकाल दिया। इस मैदान में अब चीनी सेना का कार्यालय और दुकानें हैं।

## मानावाधिकारों के हनन की सार्वभौमिक निन्दा

चीन की जन मुक्ति सेनाओं की यह घोषणा कि चीनी सेनाएं तिब्बत की ''मुक्ति'' के लिए आई हैं 1960 में पूरी तरह झूठ सिद्ध हो गया जबकि तिब्बत पर 'अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग' की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में लिखा है कि चीन ने योजनापूर्वक मानवाधिकारों का उल्लंघन किया जिसमें नश्ल-विनाश भी शामिल है। [See 1960 ICJ Report] संयुक्त राष्ट्र संघ के तीन प्रस्ताव - 1959 [UNGA Res. 1353 (XIV)], 1961 [(UNGA Res. 1723 (XVI)] and 1965 [UNGA Res. 2079(XX)] जिनमें चीन पर जोर दिया गया कि वह तिब्बतियों के मानवाधिकारों की रक्षा करे जिसमें आत्म निर्णय का अधिकार भी शामिल है। इन प्रस्तावों से आयोग की खोजों को बल मिला है।

## सरकारों और संसदों द्वारा समर्थन

अनेक राष्ट्रों की संसदों ने प्रस्ताव पास करके चीन सरकार को तिब्बतियों के मानवाधिकारों का सम्मान करने के लिए कहा है। इनमें मुख्य सरकारें हैं-युरोपीय संसद (अक्तूबर 14, 1987, मार्च 15, 1989 और अप्रैल 25-26, 1990), पश्चिमी जर्मनी (अस्तूबर 15, 1987), इटली (अप्रैल 12, 1989) आस्ट्रेलिया (दिसम्बर 6, 1990 जून 6, 1991), बेल्जियम (मार्च 29, 1994) और कैनेडा (जून 14, 1995)।

अमरीका की सिनेट और संसद दोनों ने दस से अधिक प्रस्ताव पारित करके चीन से तिब्बतियों के राजनीतिक तथा मानवाधिकारों का सम्मान करने के लिए कहा है। 28 अक्तूबर 1991 को अमरीका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कांग्रेस के एक प्रस्ताव को कानून के रूप में हस्ताक्षर किया। उसमें कहा कि,

''स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार तिब्बत अनाधिकृत विदेशी अधिपत्य का शिकार राष्ट्र है जिसके असली प्रतिनिधि दलाई लामा और तिब्बत सरकार है जिसे तिब्बती लोग स्वीकार करते हैं।'' इसी प्रकार अन्य अनेक सरकार ने सीधे चीन सरकार को अपनी चिन्ता से अवगत करवाया था।

ब्रिटिश संसद की विदेशी मामलों की चुनी हुई समिति ने 8 दिसम्बर 1993 को तिब्बत पर सुनवाई की। 19 जून, 1995 को जर्मन संसद बुंदेस्टेग में तिब्बत स्थिति पर विस्तृत चर्चा हुई जिसमें परम पूज्य दलाई लामा विशेष महमान थे। ये बहसें चीन और चीन समर्थकों के प्रबल विरोध के बावजूद संभव हो सकी।

अधीनस्थ तिब्बत की स्थिति के विषय में अनेक देशों में बनी सांसद समर्थक ग्रुप ने भी चिन्ता व्यक्त की है जैसे कि भारत (27 अप्रैल 1989), आस्ट्रिया (मई 24,1989) आस्ट्रेलिया (9 मार्च 1989), स्विटज़रलैंड (16 मार्च 1989), नार्वे (5 दिसम्बर, 1991), लिथूनिया (27 फरवरी, 1992) पोलैंड (30 मई, 1994), लाटविया (8 सितम्बर, 1994) और इस्टोनिया (27 सितम्बर, 1994)।

## निकट अतीत में संयुक्त राष्ट्र संघ में तिब्बत पर चर्चा

1985 में एक बार फिर संयुक्त राष्ट्र संघ में तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति पर चर्चा हुई। अनेक गैर-सरकारी संस्थाओं ने तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति पर चर्चा करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग से अपील की। तब से तिब्बत संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक मंचों पर चर्चा का विषय रहा तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग और उसकी उप-समितियों में इसकी चर्चा निरन्तर हुई।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग के 51वें अधिवेशन में जो कि 30 जनवरी से 10 मार्च 1995 तक जेनेवा में हुआ, गैर सरकारी संस्थाओं तथा कुछ सरकारों ने जिनमें फ्रांस सरकार (जो कि पूर्वी युरोप के देशों के प्रतिनिधियों की अध्यक्षता कर रही थी), अमरीका, आयरलैण्ड, नार्वे और आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधियों ने तिब्बत में मानवाधिकारों की विषम स्थिति पर चर्चा की। इन्होंने तिब्बतियों के आत्म-निर्णय के अधिकार, धार्मिक स्वतन्त्रता,

मनमाने ढंग से कैद किए और काल-कोठड़ियों में डाले तिब्बतियों के मानवाधिकार जैसे क्षेत्रों पर बात की। गैर सरकारी संस्थाओं के वक्तव्यों को संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रकाशित किया। अनेक विशेष रिपोर्टरों ने और कार्यकारी समूहों ने विशेष रूप से तिब्बत में धार्मिक आज़ादी और मनमाने ढंग से कैद करने के बारे में चीन की नीतियों के विरुद्ध पुख्ता आरोप लगाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक समितियों और उप समितियों ने तिब्बत में मानवाधिकारों पर विस्तृत चर्चा की और चीन के अस्पष्ट उत्तरों की निन्दा की गई। इस में अप्रैल 1990 में 'यंत्रणाओं के विरुद्ध समिति' तथा 'सभी प्रकार के जातीय भेदभाव के विरुद्ध बनी समिति' की चौथी बैठकें भी थीं।

तिब्बत में तिब्बती बच्चों की हालत पर चर्चा अनेक तिब्बती और गैर तिब्बती असरकारी संस्थाओं और विशेषज्ञों द्वारा प्रारम्भ की गई। संयुक्त राष्ट्र संघ की 'बच्चों के अधिकार' सम्बन्धी समिति के बैठक पूर्व के सत्रों में यह चर्चा हुई। परम पूज्य दलाई लामा द्वारा स्वीकृत छह वर्षीय अवतार पंचेन लामा के गायब हो जाने का मसला इस समिति में विशेष रूप से उठाया गया और समिति के अन्तिम निर्देशों में इनका उल्लेख अवश्य रहेगा।

23 अगस्त, 1991 को संयुक्त राष्ट्र की अल्प संख्यकों की सुरक्षा और भेदभाव रोकने विषयक उप-समिति ने 'तिब्बत में स्थिति' विषयक प्रस्ताव (1991/10) पास किया जिसमें "तिब्बत में मूलभूत मानवाधिकारों के उल्लंघन और स्वतन्त्रता के विनाश की निरन्तर बढ़ती खबरों की ओर संकेत किया जिससे एक विशिष्ट तिब्बती संस्कृति, धर्म और राष्ट्रीय पहचान के नष्ट हो जाने का भय है।"

यह विडम्बना ही है कि इससे माओ का यह कथन सिद्ध होता है कि एक न्यायपूर्ण पक्ष को अनेक समर्थक मिल जाते हैं।

## तिब्बती स्व-शासन का भ्रमजाल

अपने श्वेत पत्र में चीन दावा करते हैं कि "1959 के प्रजातान्त्रिक सुधारों" के अधीन उसने "प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था की नई प्रणाली लागू की थी" और तिब्बती "अपने देश के स्वामी बन गए हैं।" इस कथन से और

अधिक झूठी कोई बात नहीं हो सकती। भले ही ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' को स्वशासी कहा जाता है परन्तु तिब्बतियों को उसमें कोई भागीदारी नहीं मिली है। अन्तिम निर्णय चीन के साम्यवादी दल के हाथ में होता है जो कि ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' की साम्यवादी पार्टी के प्रथम सचिव के पद पर नियुक्त अधिकारी के माध्यम से लिया जाता है जो कि अनिवार्य रूप से एक चीनी ही होता है। 1959 में वह झांग गुहुआ था, उसके पश्चात् सेंग युन या, रेन रोंग, यिन-फतांग, वू जिनहुआ, हू जिनताओ और चेन कुई-युआन क्रमशः प्रथम सचिव हुए।

यहां तक कि उच्चतम तिब्बती अधिकारी जैसे कि डापो डबांग जिग्मे भी अपने अधीनस्थ चीनी अधिकारियों की सहमति के बिना कोई निर्णय नहीं ले सकता। उन्हें तो तिब्बत में रहने भी नहीं दिया जाता। उनकी तिब्बत में यात्राएं केवल चीन सरकार की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही होती थी। इस प्रकार के प्रतिबन्ध विशेष रूप से स्वर्गीय पंचेन लामा पर लगाए गए।

सभी 'प्रजातान्त्रिक सभाओं' में पूर्व निश्चित सुझाव-पत्र जिसे स्थानीय साम्यवादी दल तैयार करता है, प्रस्तुत किया जाता है जिनकी प्रशंसा करके और हाथ खड़े करके उसे पास कर दिया जाता है। आलोचना करना, संशोधन या परिवर्तन के सुझाव देना अक्षम्य अपराध हैं। सभाओं के पूर्व निश्चित निर्णयों को इसके पश्चात् ''प्रजातान्त्रिक निर्णय'' कहकर प्रचारित किया जाता है।

तिब्बत में चीनी प्रशासन में तिब्बती किसी भी पद पर क्यों न हो उसके नीचे एक चीनी अधिकारी रहता है जो वास्तविक सत्ता का भोग करता है। अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्यलयों में जैसे कि ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' के आर्थिक नियोजन का विभाग और कार्मिक विभाग में चीनी अधिकारी और क्लर्क तिब्बतियों से कहीं अधिक होते हैं।

जहां तक लोगों के तथाकथित डेपुटीज़ के चुनाव का प्रश्न है सभी सदस्य पहले से ही चीनी अधिकारी द्वारा निश्चित किए होते हैं। जिन अधिकारियों द्वारा उन्हें मनोनीत किया जाता है वे ही चुनाव के पश्चात् उन्हें चुना हुआ घोषित करते हैं।

तिब्बत का ऐसा आधा भाग जिसे चीन में मिला लिया गया है उसकी तिब्बती जनसंख्या को अधिकार विहीन करके अपने ही देश में नाममात्र के अल्प संख्यक समुदाय में बदल दिया गया है।

# 6
# सामाजिक-आर्थिक स्थितियां और उपनिवेशवाद

''इस विकास के लिए तिब्बत ने जो कीमत चुकाई है वह इससे होने वाले लाभों की अपेक्षा कहीं अधिक है।'' यह निर्णय तिब्बत में चीन के तीन दशकों के शासन के विषय में दिवंगत पंचेन लामा का था। हर वर्ष चीन सरकार तिब्बत के महान आर्थिक प्रगति का दावा करती है; फसल बहुत अच्छी हुई, औद्योगिक विकास हुआ तथा आधारभूत साधनों का विकास हुआ इत्यादि घोषणाएं होती हैं। ये घोषणाएं तब भी की जा रही थी जब कि अपने लिखित इतिहास में पहली बार (1961-64 और 1968-73) तिब्बत भुखमरी का सामना कर रहा था। बाद में चीन सरकार द्वारा तिब्बती लोगों पर थोपी गई विनाशकारी आर्थिक और सामाजिक नीतियों के दुष्प्रभाव को स्वीकार भी किया गया।

तिब्बत में चीन के इतिहास को देखते हुए तथा तिब्बत के सामाजिक और आर्थिक विकास का मूल्यांकन करते हुए दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए: पहला यह कि चीनी दावों को ज्यों का त्यों सत्य न माना जाए, यहां तक कि सरकारी आंकड़े भी निश्चित राजनीतिक विचार को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं न कि वस्तुस्थिति का वस्तुगत चित्र प्रस्तुत करने के लिए। दूसरे यह कि तिब्बत के आर्थिक विकास से तिब्बतियों को कोई आर्थिक लाभ नहीं पहुँचा है। चीन द्वारा किए गए आर्थिक विकास का मुख्य लाभ चीन से आकर बसे चीनियों, चीन सरकार, चीनी सेना और उनके व्यापारिक संस्थानों को हुआ है।

एक चीनी नेता हू-याओबांग था जो कि साम्यवादी दल का सचिव भी था जिसने ईमानदारी से स्वीकार किया कि चीन द्वारा तिब्बत में तिब्बतियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाने की नीतियां असफल हुईं। 1980 में तिब्बत में अपनी

यात्रा के दौरान उसने कहा कि अत्यधिक प्रचारित चीनी ''सहायता'' से तिब्बत को कोई लाभ नहीं हुआ। उसने अनेक सामुदायिक गृहों का दौरा किया जिनमें ''साम्राज्यवाद विरोधी सामुदायिक गृह'' भी थे। तिब्बतियों की नितान्त निर्धनता से हताश होकर उसने ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' के सभी उच्च अधिकारियों की सभा बुलाई और पूछा कि चीन द्वारा दी गई सारी आर्थिक सहायता क्या यारलुंग नदी में फैंक दी गई हैं? उसने शिकायत की कि चीनी प्रचार के विरुद्ध तिब्बत में जीवन स्तर 1959 के स्तर से भी नीचे चला गया है और चीन के लोगों की अत्यधिक उपस्थिति विशेषकर सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति विकास में बाधक है। उसने तुरन्त आदेश दिए कि 1959 तक के जीवन-स्तर को पुनः लाने के प्रयास प्रारम्भ किए जाएं और 85% चीनी अधिकारियों को वापिस बुला लिया जाए। 'तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र' के साम्यवादी दल के सचिव, यिन फातांग के अनुसार हू का तिब्बत के विषय में आकलन यह था कि यह 'निर्धनता और पिछड़ेपन' में डूबा क्षेत्र है। [*Red Flag*, No.8, 1983]

चीनी दावों और तिब्बत की वास्तविक स्थिति के अन्तर को तभी आसानी से समझा जा सकता है जब यह समझ लिया जाए कि तिब्बत में चीनी शासन मूलतः औपनिवेशिक है। औपनिवेशिक दौर में उपनिवेशवादी शासकों द्वारा अपने ''पिछड़े'' उपनिवेशों को सामाजिक और आर्थिक रूप में विकसित करने के बढ़-चढ़ कर दावे करना स्वाभाविक क्रिया थी। यह भी सत्य है कि कहीं कहीं विकास होता भी था परन्तु वहां के मूल निवासी औपनिवेशिक शक्ति को और उसके व्यापारिक संस्थानों को लाभ पहुँचाने के अधिक प्रयुक्त होते थे। उन्हें इसके बदले में बहुत कम लाभ मिलता था।

उपनिवेशवाद की मूलभूत अवधारणा है कि उपनिवेश का शोषण औपनिवेशिक शक्ति के लाभ के लिए किया जाए। तिब्बत में यह बात आज भी पूरी तरह सत्य है।

## 1949 से सामाजिक आर्थिक सुधार

तिब्बत पर अधिकार के पश्चात् चीन ने तिब्बत में दूरगामी समूहीकरण के कार्यक्रम लागू किए। किसानों की तरह चरवाहों का सारा पशुधन सरकार

ने जब्त कर लिया और उन्हें ब्रिगेड़ों और कम्यूनों में बांट दिया। चरवाहे पशुधन की देखरेख करते थे परन्तु उसंसे प्राप्त उत्पाद पर उनका कोई अधिकार नहीं था। यही बात कृषकों पर लागू होती थी। उन्हें प्रति वर्ष औसत रूप में राशन में पाँच-छह पाऊण्ड माखन, दस पाऊण्ड माँस और चार या पाँच खैल चा़म्पा (सत्तू) दिया जाता था। (एक खैल 25 या तीस पाऊण्ड के बराबर होता है।)

1961-64 और 1968-73 में चरागाहों में भुखमरी व्यापक रूप से फैल गई। हजारों तिब्बतियों को जान बचाने के लिए चूहों, कुत्तों, कीटों और जो भी मिला उसी को खाकर रहना पड़ा। 1979 में चीन के नए नेतृत्व ने उदारीकरण की नीति चलाई जिसके अनुसार समूहीकरण की प्रक्रिया समाप्त की गई जिससे लोगों को कुछ राहत मिली।

फिर भी स्थितियां अभी भी संतोषजनक नहीं हैं। 1990 में ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 80 डालर, साक्षरता दर 21.7 प्रतिशत तथा औसत आयु 40 वर्ष है। ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रमों में मानव विकास के 1991 की सूचि में 0.087 अंक ही पाता है। सैद्धान्तिक रूप से इसके अनुसार ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' चाड़ और जीबूटी (Djibouti) के बीच आता है और विश्व के 160 राष्ट्रों में उसका स्थान 153 वां बनता है।

चीनी अधिकारी इन तथ्यों से परिचित हैं। मार्च 1990 में बीजिंग में चीनी जनता की राष्ट्रीय कांग्रेस के सातवें सत्र की तीसरी सभा में बोलते हुए ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' के अध्यक्ष दोरजे छ़ेरिंग ने कहा था, ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र अभी भी बहुत निर्धन क्षेत्र है जहाँ प्रति व्यक्ति आय मात्र 200 युआन है।'' भिखारियों की संख्या में होती वृद्धि वहां की बढ़ती अर्थिक समस्याओं की सूचक है। 1992 में साकादावा के पंद्रहवें पवित्र दिन (तिब्बती कैलेण्डर के चौथे महीने में) जबकि सोक ज़िला की सुश्री द्रोकी के पिता ने प्रत्येक भिखारी को पाँच फेन की भीख देनी प्राम्भ की तो उसके 500 युआन चले गए और अभी आधे भिखारियों को भी भीख नहीं मिली थी। (100 फे़न = एक युआन)

अपने श्वेत पत्र में चीन सरकार फिर यह दावा करती है कि उसने तिब्बत में बहुत समृद्धि लाई है और तिब्बतियों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत लाभ पहुँचाया है। उसकी शिकायत है कि पिछड़े तिब्बत को ''सभ्य'' बनाने के कार्यक्रम में अनुदान के रूप में उसे बहुत बड़ी धनराशि खर्च करनी पड़ रही है। चीन के सरकारी आंकड़ों के अनुसार ''तिब्बत स्वयत्त क्षेत्र'' को यह वार्षिक सहायता 1980 के दशक के अन्त में एक अरब युआन अर्थात 27 करोड़ अमरीकी डालर थी।

जो बात चीन सरकार स्वीकार नहीं करेगी वह यह है कि उसने तिब्बत से जो कमाया है वह वहाँ दी गई सहायता से कहीं अधिक है। धन की दृष्टि से तिब्बत से जितनी इमारती लकड़ी चीन गई है उसकी कीमत चीनी सहायता से कहीं ज्यादा है। इसमें युरेनियम, सोना, चांदी, ताम्बा, बॉरेक्स, लिथियम, क्रोमाईट आदि खनिज पदार्थों के विशाल भण्डारों तथा बहुमूल्य कला कृतियों की गणना नहीं की गई है।

इससे भी बड़ी बात यह है कि चीन की आर्थिक सहायता का बड़ा भाग तिब्बत में स्थित चीनियों पर खर्च होता है। इसका बड़ा भाग चीन से आकर बसने वालों को प्रोत्साहन राशि के रूप में जाता है। तिब्बतियों को इससे बहुत कम लाभ होता है।

यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अनुदानों के बंटवारे के अन्तर का अध्ययन करते हैं। 1970 से 1980 के प्रारम्भिक वर्षों में औसत रूप से एक शहरी पर 128 डालर और एक ग्रामीण पर 4.50 डालर खर्च किया गया। ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' के शहरी क्षेत्रों में चीनी नागरिक और सरकारी कर्मचारी बड़ी मात्रा में आकर बसे हैं और उनकी ल्हासा, न्यींगठी, ग्यांग्चे़, नाग्छू, डारी, शिगाचे़, चे़थांग और छाम्दो आदि में बहुसंख्या है। तिब्बती लोग अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। इस प्रकार अनुदानों का बड़ा हिस्सा शहरों में बसे चीनियों और उनको आधारभूत सुविधाएं देने पर खर्च होता है।

जिन वस्तुओं पर अनुदान दिया जाता है वे भी प्राय: वहीं हैं जिन्हें चीनी प्रयोग करते हैं। तिब्बतियों का मुख्य भोजन जौ (सत्तू बनाने के लिए) है भले

ही धनी तिब्बती उसमें कभी कभी गेहूँ और चावल भी मिला लेते हैं। केवल चावल और गेहूँ के मूल्यों पर ही सरकारी सहायता मिलती है। यह अधिकांश चीनियों का मुख्य आहार है। 1985 से जौ का मूल्य बाज़ारी शक्तियों द्वारा निर्धारित होने के लिए छोड़ दिया गया था और प्रति किलो 76 फेन था जबकि सरकार 90 फेन प्रति किलो से चावल खरीद कर 40 फेन प्रति किलो बेच रही थी और गेहूँ 112 से 126 फेन प्रति किलो खरीद कर 44 से 48 फेन प्रति किलो बेच रही थी। [संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम 1986] इस प्रकार की सरकारी सहायता चीनी लोगों के लिए ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में बसने का प्रोत्साहन देती है जबकि तिब्बतियों के लिए पुराने जीवन स्तर पर जीना भी मुश्किल हो रहा हैं।

इमारती लकड़ी और खानों के व्यवसाय में चीनी सहायता का बड़ा अंश आता है और इन व्यवसायों में चीन से आकर बसे सर्वाधिक लोग कार्यरत हैं। इन उद्योंगों के उत्पाद चीन और बाहर के देशों में भेजे जाते हैं जिनसे तिब्बत के लोगों को इनसे कोई लाभ नहीं होता।

दूसरी और तिब्बतियिों को सीमान्त पर धकेल दिया गया है और उनका अपने प्राकृतिक स्त्रोतों पर कोई अधिकार नहीं है। सड़कों के निर्माण का मूल लक्ष्य चीन की आक्रामक सेनाओं और सामान को गन्तव्यों तक पहुँचाना है। तिब्बत में बसने वाले चीनियों की सुविधा तथा तिब्बत के वनों और खनिजों को स्थल मार्ग से चीन ले जाने के लिए सड़कों का विस्तार हो रहा है। सड़कें भले ही तिब्बत के अधिकांश ग्रामीण भागों से गुजरती हों परन्तु सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था का नितान्त अभाव है। चीन की आधुनिक परिवहन व्यवस्था का लाभ अधिकांश तिब्बतियों को नहीं मिल पाता। कुछ गांवों को सप्ताह में एक दिन बसें अवश्य चलती हैं परन्तु यात्री प्राय: पार्टी कार्यकर्त्ता ही होते हैं। तिब्बत के अधिकांश भागों में लोग अभी भी घोड़ों, खच्चरों, याकों, गधों और भेड़ों को ही परिवहन का मुख्य साधन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। चीन सरकार के लिए चलने वाले ट्रक भी तिब्बतियों के लिए आवागमन के आवश्यक साधन बन गए हैं।

इस प्रकार तिब्बत में विकास की रूपरेखा तिब्बत के अर्थतन्त्र को नियन्त्रित करने वाली है न कि व्यवसायों और उद्यमों को उत्प्रेरित और

विकसित करने वाली। यह एक ऐसे दुष्चक्र को जन्म देती है जिसमें स्थानीय मांगें चीनी आधिपत्य वाले व्यवसायों से चीन से पूरी की जाती हैं। इन उद्यमों से प्राप्त लाभों को सरकारी सहायता के रूप में खर्च किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप चीन के उद्योगों के लिए वांछित प्राकृतिक साधनों के अधिक से अधिक दोहन की स्थितियां पैदा होती हैं।

इन अनुभवों के आधार पर हम कह सकते हैं कि तिब्बती अर्थ तन्त्र को बाहरी निवेशकों के लिए खोलने का लक्ष्य है अधिकाधिक चीनी जनसंख्या को तिब्बत में स्थानान्तरित करना और औपनिवेशिक शक्ति के हित में अधिकाधिक प्राकृतिक स्रोतों का प्रयोग करना।

अन्तिम विश्लेषण में स्थिति कुछ भी हो, महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं है कि कौन अधिक कारखाने लगा सकता है अथवा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बढ़ा सकता है। प्रश्न यह है कि विदेशी सत्ता कितनी ही कुशल अथवा आधुनिक क्यों न हो, क्या उसे किसी राष्ट्र पर अपना शासन थोपने का अधिकार है ?

## स्वास्थ्य के क्षेत्र में भेदभाव

स्वास्थ्य सेवाएं न केवल शहरोन्मुखी हैं बल्कि निर्धनों की अपेक्षा अमीरों के लिए अधिक बनी हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के लिए निर्धारित बजट का 10% ग्रामीण क्षेत्र में और शेष 90% उन शहरी क्षेत्रों में लगता है जहां अधिकांश चीनी प्रवासी आकर बसे हैं, वहीं पर अधिकतर अस्पताल स्थित हैं।

स्वास्थ्य सेवाएं जहां तिब्बतियों को उपलब्ध भी हैं वे अनावश्यक रूप से महंगी हैं। अस्पताल में दाखिल होने के लिए एक रोगी को 300 से 500 युआन जमा करवाने पड़ते हैं जो कि 80 से 133 अमरीकी डालरों के बराबर हैं। एक निर्धन देश के लोगों के लिए जिनकी प्रति व्यक्ति वार्षिक आय 200 युआन है, यह राशि बहुत बड़ी है। इसी प्रकार शल्य चिकित्सा और रक्त चढ़ाने का लाभ उन्हें ही मिलता है जो इसकी कीमत दे सकते हैं। औसत तिब्बती सामान्य चीनी की अपेक्षा बहुत निर्धन है।

चीनी यह दावा करते हैं कि ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में 3,700 डाक्टर और स्वास्थ्य कर्मचारी हैं। आओ इस दावे की परीक्षा करें। अधिकांश डाक्टर वे हैं जो चीन में परीक्षाओं में असफल रहे या जिनका कार्य असंतोषजनक था तथा जिन्हें चीन में काम मिलने की कोई संभावना नहीं थी। उनमें से कुछ को ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में तीन वर्ष का प्रशिक्षण दिया गया है। जिला स्तरीय औषधालयों में जहां नंगे-पैर वाले डाक्टर भर्ती होते हैं जो केवल डेढ़ वर्ष ही प्रशिक्षित हैं, उनका लक्ष्य चीनी सेना के अधिकारियों के परिवारजनों को नौकरी देना होता है।

ऐसी अनेक शिकायतें मिली हैं जहां चीनी डाक्टरों ने तिब्बती रोगियों को नए प्रयोगों की सामग्री के रूप में प्रयोग किया है। यह सामान्य सी बात है कि चीनी औधष विज्ञान के स्नातकों को प्रशिक्षण के लिए तिब्बत भेजा जाता है और वे केवल तिब्बती रोगियों को मनचाहे ढंग से उपचार कर सकते हैं। ये भी आरोप लगे हैं कि तिब्बतियों का परीक्षण उन रोगों के लिए भी किया जाता हैं जिनके कारण वे दाखिल नहीं हुए थे। विशेष रुप से बिना किसी वास्तविक जरूरत के उनके आप्रेशन किए जाते हैं।

हम कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं। अगस्त 1978 में मारखम स्थान से कालसंग और उसकी पत्नी अपनी 21 वर्षीय गर्भवती बेटी के साथ जिसे तीन मास का गर्भ था ''ति० स्वा० क्षेत्र के अस्पताल संख्या 2'' में स्वास्थ्य परीक्षण के लिए लाए। (तब यह श्रमिक अस्पताल कहलाता था।) चीनी डाक्टरों ने उस पर एक अनावश्यक आप्रेशन किया। दो घण्टे पश्चात् भयंकर शारीरिक पीड़ा से चिल्लाते हुए वह चल बसी।

लगभग इसी समय एक अन्य आप्रेशन में ल्हासा विद्युत स्टेशन के मिगमार अपनी 25 वर्षीय पत्नी को ल्हासा अस्पताल में प्रजनन के लिए लाए। शल्य चिकित्सा द्वारा प्रजनन करवाते समय बच्चे और मां की मृत्यु हो गई। जब 'खुले कब्रिस्तान' में उसकी लाश नष्ट हुई तो उसके शरीर में कैंची पड़ी पाई गई।

जेल में तो उपचार अधीन लोगों की मृत्यु की अनेक कहानियां प्रचलित हैं। सांग्यिप जेल में स्वर्गीय पंचेन लामा के एक प्रशिक्षक डुलछु रिंपोछे और

एक अन्य व्यक्ति जिसका नाम टेथोंग-ची-जिग्मे था किसी अज्ञात पदार्थ का टीका लगाने से मारे गए। द्रापची जेल में पूर्णतया स्वस्थ कैदी सोनम भागडो को यंत्रणाएं देने के पश्चात् टीका लगाया गया। परिणाम स्वरूप वह मर गया। निकट अतीत में 1987 के पश्चात् तिब्बती ल्हाकपा छेरींग, सामला, मेतोक छोज़ेद् आदि ऐसी ही स्थितियों में ''इलाज'' के पश्चात् मर गए।

तिब्बतियों के लिए घटिया स्वास्थ्य सेवाओं और निम्न स्तर की सार्वजनिक स्वच्छता की स्थिति का परिणाम यह निकला कि तिब्बतियों की मृत्यु दर बढ़ी। विश्व बैंक की 1984 की तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम की 1991 की रिपोर्टों के अनुसार मोटे तौर पर 1981 में ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में तिब्बतियों की मृत्यु दर प्रति हजार 7.48 थी तथा आम्दो में 9.92 थी जबकि चीन में औसत मृत्यु दर 6.6 थी। बच्चों की मृत्यु दर भी बहुत अधिक है, 150 प्रति हजार जबकि चीन में यह मात्र 40 प्रति हजार है। विश्व बैंक के अनुसार टी०बी० द्वारा मृत्यु की दर 120.2 प्रति हजार ''ति० स्वा० क्षे०'' में है तथा 647 प्रति हजार आमदो में है।

तिब्बत से प्राप्त मनुष्य की औसत आयु के आंकड़े प्राय: विश्वसनीय नहीं है। 1990 में विश्व बैंक के अनुसार चीन में औसत आयु 70 थी जबकि ''ति० स्वा० क्षे०'' और आम्दो में यह 61 थी जो कि 1960 में 47 से बढ़कर इतनी हुई थी जैसा कि 1991 में संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम के आंकड़ों से ज्ञात होता है। किन्तु एक स्वतन्त्र स्रोत के अनुसार चीनी स्वयं मानते हैं कि तिब्बत में मनुष्य की औसत आयु लगभग 40 है।

## शिक्षा में भेदभाव

दिवंगत पंचेन लामा के शब्दों में चीन की गत तीन दशकों की शिक्षा नीति को निम्न शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। चीन के तिब्बत-विद्या संस्थान में 1988 में बोलते हुए उन्होंने कहा, ''जो देश सातवीं शताब्दी से 1,300 वर्ष तक अपनी देखभाल स्वयं करता रहा, मुक्त होने के पश्चात् उसकी भाषा खो गई है। हमने भले ही भूलें की हों या हम पिछड़े रहे हों परन्तु तिब्बती भाषा के आधार पर ही हम संसार के सबसे ऊँचे पठार पर

अपना जीवन चलाते रहे। प्रत्येक विषय चाहे वह बौद्ध धर्म हो, शिल्प हो, नक्षत्र विज्ञान, ज्योतिष, कविता अथवा तर्कशास्त्र हो, सभी तिब्बती में लिखे जाते थे। जब तिब्बत-विद्या का संस्थान खुला था तब मैंने 'पीपल्स पैलेस' में कहा था कि तिब्बती विद्या का आधार उसके अपने धर्म और संस्कृति में होना चाहिए। अभी तक हमने इन विषयों को तुच्छ माना है।''

''संभवत: साम्यवादी दल का लक्ष्य जानबूझकर तिब्बती संस्कृति को मरने देना न हो परन्तु मैं सोचता हूँ कि क्या तिब्बती भाषा बचेगा या नष्ट हो जाएगी।''

स्वतन्त्र तिब्बत में 6,000 से अधिक बौद्ध विहार और मठ, स्कूलों और विश्वविद्यालयों के रूप में कार्य करके तिब्बत की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करते थे। इसके अतिरिक्त तिब्बत में सरकार तथा अन्य लोगों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल भी थे। चीन सरकार की दृष्टि में तिब्बत के परम्परागत विद्या केन्द्र 'अन्ध विश्वास' फैलाने के स्रोत और 'सामन्ती शोषण' के पालक थे। बौद्ध विहारों के स्थान पर चीनी प्रशासन ने गांवों और चरवाहों के क्षेत्र में तिब्बतियों को स्वतन्त्र पाठशालाएं स्थापित करने के लिए विवश किया। इन स्कूलों पर चीन सरकार का एक पैसा भी खर्च नहीं किया गया।

ये स्कूल चीनी प्रचारतन्त्र के लिए प्रभावी आंकड़े जुटाने के साधन बने। शिक्षा विषयक अधिकांश आंकड़े भ्रामक हैं। चीन का दावा है कि उसने ''ति० स्वा० क्षे०'' में लगभग 2,500 स्कूल खोले हैं किन्तु उनमें से अधिकांश को किसी भी रूप में स्कूल नहीं कहा जा सकता। अधिकांश अध्यापक प्रारम्भिक तिब्बती भाषा तक पढ़ाने में सक्षम नहीं हैं। स्वाभाविक रूप से बच्चे इन स्कूलों में नहीं जाना चाहते थे। वास्तविकता यह है कि अधिकांश जन-पाठशालाएं समाप्त हो चुकी हैं।

चीन के एक सरकारी प्रकाशन 'टिबेट रिव्यू' (नं०2, 1986) में तीन चीनी समाज शास्त्रियों ने स्वीकार किया है, ''केवल 58 माध्यमिक स्तरीय स्कूल (ति० स्वा० क्षे० में) हैं। उनमें से केवल 13 ही वास्तविक रूप में माध्यमिक स्कूल हैं। कुल मिलाकर तिब्बत में 2,450 प्राईमरी स्कूल हैं उनमें से केवल 451 सरकारी धन से चलते हैं। 2,000 से अधिक स्कूलों को जनता

के पैसे से चलाया जाता है। इन स्कूलों का आधार मजबूत नहीं है और इनमें पर्याप्त सामग्री नहीं है। शिक्षा का स्तर तो शून्य है या बहुत ही नीचा। इसलिए वैज्ञानिक कौशल के विकास की संभावना को इनमें पूरी तरह खारिज किया जा सकता है। वर्तमान में 90% किसान और चरवाहों को प्रारम्भिक मिडल स्तर की शिक्षा भी प्राप्त नहीं होती है। इस के चलते उच्च मिडल स्तर की शिक्षा अथवा सार्वभौमिक शिक्षा की बात करना वैसा ही है जैसे लोगों को कहना कि वे अच्छी तरह भोजन करें जबकि अनाज कहीं हो ही नहीं। स्कूल जाने वाली आयु के मात्र 45% बच्चे ही स्कूल जा पाते हैं। उनमें से 10.6 प्रतिशत ही प्रारम्भिक प्राथमिक स्तर को पार कर पाते हैं। इसका अर्थ है कि 55% बच्चों को तो प्राथमिक शिक्षा भी नहीं मिल पाती। पूरे ''ति० स्वा० क्षेत्र'' में 9,000 अध्यापक हैं और यह संख्या आवश्यकता से कहीं कम है। 50% अध्यापक तो पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित भी नहीं है। विभिन्न राष्ट्रीयताओं में समानता तभी आ पाएगी यदि इस स्थिति में सुधार होगा।''

1959 और 1966 के बीच चीन सरकार ने असंख्य 'विचार नियन्त्रक' आन्दोलन चलाए जिससे तिब्बत पर उनकी पकड़ मजबूत हो। विद्वान और योग्य तिब्बती अध्यापकों जैसे कि लामाओं, पुजारियों, गैशे और अन्य विद्वानों को जेल में डाल दिया गया या श्रमिक शिविरों में भेज दिया गया। जब प्रशिक्षित अध्यापक जेलों में सड़ रहे थे उस समय स्कूल एक या दो अप्रशिक्षित अध्यापकों के सहारे चल रहे थे।

निर्वासित तिब्बत सरकार द्वारा भेजी तीसरे तथ्य संकलन प्रतिनिधिमण्डल को चीन सरकार द्वारा बताया गया कि तिब्बत में 2,511 स्कूल हैं। इस प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व कर रही श्रीमती जैचुन पेमा का कथन है, ''हम जहाँ कहीं भी गए वहां पर स्कूल का निरीक्षण कर पाना अत्यधिक कठिन था। स्कूल गृष्मावकाश के लिए बन्द है, हेडमास्टर छुट्टी पर गया हुआ है, बच्चे भोजन करने गए हुए हैं (दिन के 10 बजे।) जैसे कुछ बहाने लगाए जाते थे। ऐसा ही बहाना सुनने के पश्चात् प्रतिनिधि मण्डल ने एक कक्षा में झांका तो पाया कि पूरा कमरा फर्श से छत तक इमारती लकड़ी से भरा है। एक और स्थान पर तम्बू स्कूल की दरी को उठा कर देखा तो उसके नीचे की घास अभी भी हरी थी।''

1988 में रैपटन स्कूल इंग्लैंड के शिक्षा निदेशक, जॉन बिल्लिंगटन, ने तिब्बत में व्यापक रूप से भ्रमण किया और लिखा, ''ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश छोटे बच्चे खेतों में काम करते हुए, घास काटते हुए, याक का गोबर इकट्ठा करते, भेड़ों को चराते या स्टालों पर काम करते दिखाई पड़े। खोजबीन से पता चला कि वे स्कूल नहीं जाते और अधिकांश में इसका कारण यह था कि वहां स्कूल थे ही नहीं। गांव के बुजुर्गों से यह सुनकर मन उदास हुआ कि एक समय था जबकि बौद्ध मठों के साथ गांव की पाठशाला होती थी, परन्तु जब मठों को नष्ट किया गया तो पाठशाला भी गई और उसके स्थान पर कुछ नहीं किया गया। प्रचलित व्यवहार के विपरीत मैं एक ऐसे वृद्ध चरवाहे से मिला जो पढ़ लिख सकता था, और यह इस क्रूर सत्य का द्योतक था कि उसके पोते पोतियां शिक्षा से वंचित थे।''

एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि चीनी शिक्षा का लाभ सर्वाधिक किन्हें हुआ है? श्वेत पत्र में चीन सरकार ने दावा किया है कि उसने तिब्बत में शिक्षा के प्रसार के लिए एक अरब सौ करोड़ युआन खर्च किए हैं।

इस दावे की सच्चाई कुछ भी हो परन्तु सत्य यह है कि तिब्बत में बसे चीनी विद्यार्थी ही इन अनुदानों से अधिक लाभान्वित हुए हैं। ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' के कुल शैक्षिक बजट का 30 या 50 प्रतिशत हिस्सा चीनी शहर शेन्यांग स्थित 'तिब्बती राष्ट्रीयता विश्वविद्यालय' को जाता है। इस विश्वविद्यालय में तिब्बत के किसी भी स्कूल से अधिक सुविधाएं हैं। इस स्कूल के अध्यापकों में से अधिकांश चीनी अध्यापक उस अठारहवीं चीनी सेना से हैं जिसने तिब्बत पर आक्रमण किया था। इसी प्रकार अधिकांश छात्र भी तिब्बत में नियुक्त चीनी अधिकारियों के बच्चे या संबन्धियों में से हैं।

तिब्बत में श्रेष्ठ स्कूल ल्हासा, शिगाचे़, ग्यांगचे़, छाम्दो, सिलिंग, किगुदो, दाचे़डो और देचेन में हैं परन्तु ये स्कूल मुख्य रूप से चीनी पार्टी अधिकारियों के बच्चों के लिए हैं। चीन सरकार की सहायता से चलने वाले इन स्कूलों में तिब्बती और चीनी बच्चों के लिए अलग अलग कक्षाएं हैं तथा श्रेष्ठ अध्यापक चीनी बच्चों के लिए सुरक्षित हैं। यहां भोजनालय भी दो प्रकार के हैं, 'चा़म्पा (सत्तू) जौ खाने वालों का भोजनालय' और 'चावल खाने वालों का भोजनालय।' चीनी छात्रों के लिए भोजनालय में भोजन कहीं बेहतर होता है।

प्रत्येक वर्ष विश्वविद्यालय में कुछ स्थान तिब्बती छात्रों के लिए सुरक्षित किए जाते हैं और उनका खर्चा तिब्बती शिक्षा के बजट में दर्शाया जाता है जबकि इनमें से अधिकांश स्थान चीनी छात्रों को ही चले जाते हैं। विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए छात्र को उच्च माध्यमिक स्कूल परीक्षा पास करने के पश्चात् एक प्रतियोगात्मक परीक्षा देनी पड़ती है। क्योंकि परीक्षा चीनी भाषा में ली जाती है इसलिए तिब्बती छात्र घाटे में रहते हैं और स्थान चीनी छात्रों को चले जाते हैं। जो चीनी छात्र चीन में प्रतियोगात्मक परीक्षा में असफल होते हैं वे तिब्बत में पुन: परीक्षा देने पहुँच जाते हैं ओर यह रुझान बढ़ता जा रहा है। क्योंकि तिब्बत में शिक्षा का स्तर चीन से कहीं नीचा है इसलिए ये छात्र यहां अच्छी सफलता पाते हैं और तिब्बतियों के लिए आरक्षित स्थान ले जाते हैं।

1991 में चीन और तिब्बत की यात्रा करने वाले प्रथम आस्ट्रेलियन प्रतिनिधिमण्डल ने भी लिखा है, ''प्रतिनिधिमण्डल को यह तो लगा कि चीन सरकार तिब्बतियों में शिक्षा का स्तर ऊँचा उठाना चाहती है परन्तु फिर भी अधिकांश तिब्बती छात्रों को कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिल पाती। ल्हासा में तिब्बती छात्रों को प्राईमरी और माध्यमिक स्तर तक बहुत कम पाठ्यक्रम दिया जाता है। कुछ ने यह गवाही दी कि वे कभी स्कूल नहीं जा सके या फिर दस वर्ष की छोटी अवस्था में ही उन्हें आर्थिक अथवा अन्य कारणों से स्कूल छोड़ देना पड़ा।''

20 फरवरी 1986 को ल्हासा के तिब्बत विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अध्यापक टाशी छेरिंग ने चीनी अधिकारियों से अपील करते हुए लिखा, ''1979 में ति० स्वा० क्षे० से 600 विद्यार्थी तिब्बत से चीन के अनेक विश्वविद्यालयों में अध्ययन कर रहे थे जिनमें से मात्र 60 तिब्बती थे। 1984 में तिब्बत के तीन बड़े स्कूलों में 1,984 छात्र पंजीकृत थे जिनमें 666 तिब्बती थे। इसी वर्ष 250 छात्र चीन में तिब्बत से शिक्षा पाने के लिए भेजे गए जिनमें से 60 या 70 ही तिब्बती थे। तिब्बती छात्रों के लिए सुरक्षित खर्चे का अधिकांश भाग चीनी छात्रों पर ही खर्च होता है। आज भी 70 % तिब्बती निरक्षर हैं।''

''ल्हासा के मिडल स्कूल संख्या 1 में 28 कक्षाओं में से 12 तिब्बतियों के लिए हैं........1,451 छात्रों में से 933 तिब्बती हैं और 518 चीनी। न केवल

चीनी छात्र तिब्बती भाषा नहीं पढ़ते बल्कि 387 तिब्बती छात्र भी तिब्बती भाषा नहीं पढ़ते। केवल 546 तिब्बती अपनी भाषा पढ़ रहे हैं। 111 अध्यापकों में से 30 तिब्बती हैं और उनमें से सात तिब्बती भाषा पढ़ाते हैं। मैंने सुना है कि श्रेष्ठ प्रशिक्षित अध्यापक चीनी छात्रों को पढ़ाते हैं जबकि अप्रशिक्षित अध्यापक तिब्बती कक्षाओं को पढ़ाते हैं।''

''ल्हासा की प्राथमिक पाठशाला संख्या 1 में 34 कक्षाएं हैं जिनमें तिब्बती और चीनी छात्रों के लिए 17-17 कक्षाएं हैं। 1,000 छात्र तिब्बती हैं और 900 चीनी। 200 तिब्बती छात्र अपनी भाषा नहीं पढ़ते। 136 अध्यापकों में से मात्र आठ ही तिब्बती पढ़ाते हैं।......... ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक स्कूल भूमि के और पशुओं के समूहीकरण की क्रिया समाप्त होने के पश्चात् बन्द हो गए। या तो वहां कोई अध्यापक नहीं बचा या फिर छात्र नहीं रहे।

''ल्हासा के तिब्बत विश्वविद्यालय में 413 तिब्बती छात्र हैं और 258 चीनी। 251 तिब्बती छात्र तिब्बती भाषा और साहित्य पढ़ते हैं और 27 तिब्बती चिकित्सा पद्धति। केवल 135 तिब्बती छात्र ही आधुनिक विषय पढ़ पाते हैं।.......... तिब्बती विभागों को प्रायः 'राजनीतिक जोड़-तोड़ के विभाग' कहा जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि चीन सरकार ने 60% स्थान तिब्बतियों के लिए और 40% स्थान चीनियों के लिए आरक्षित किए हैं। तिब्बती छात्रों का बड़ा हिस्सा इन दो विभागों में सिमट जाता है और आधुनिक विषयों की कक्षाओं में चीनी छात्र प्रवेश पा जाते हैं। यहाँ के अंग्रेजी विभाग में दो तिब्बती और 14 चीनी छात्र हैं।''

1966 के पश्चात् पूर्ण चीनीकरण पर बल दिया जाने लगा। तिब्बती भाषा को धार्मिक भाषा घोषित कर दिया गया और उसकी शिक्षा रोक दी गई। 1960 के दशक में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणी अध्यापकों तथा प्रशिक्षित तिब्बती अध्यापकों को अपना व्यवसाय छोड़ने की आज्ञा दी गई। तिब्बती भाषा और व्याकरण की पुस्तकों को 'अन्धविश्वास की पुस्तकें' करार देकर उनकी पढ़ाई को हतोत्साहित किया गया। इनके स्थान पर माओ-चे-तुंग के विचारों की पुस्तक और समाचार-पत्र पाठ्यक्रम का हिस्सा बने। बच्चों को पढ़ाया गया कि तिब्बती धर्म अन्ध विश्वास है, तिब्बती रीति-रिवाज ''पुराने सोच'' का है,

तिब्बती भाषा "निरर्थक पिछड़ी भाषा है" तथा प्राचीन तिब्बती समाज "अत्यधिक पिछड़ा, जंगली और शोषणपरक था।" जो चीनियों से सहमत होते थे उन्हें प्रगतिशील कहा जाता था और जो असहमत होते थे उन्हें कभी क्रान्ति-विरोधी कभी प्रतिक्रियावादी अथवा श्रमिक वर्ग के दुश्मन कहा जाता था। स्वाभाविक रूप से तिब्बतियों की एक पूरी पीढ़ी अपनी संस्कृति, इतिहास और जीवन पद्धति से अनभिज्ञ रहकर बड़ी हुई।

घरों, स्थानों और गलियों के तिब्बती नामों को मार्क्सवादी अर्थों से भरपूर चीनी नामों से बदल दिया गया। अनेक तिब्बतियों को चीनी भाषा में अपने नाम बदलने पड़े। दलाई लामा के गृष्म महल 'नोरबूलिंग्का' (मणिमय पार्क) को 'लोगों का सार्वजनिक पार्क' बना दिया गया। तिब्बती भाषा में जबरदस्ती चीनी शब्द भरकर उसे भ्रष्ट किया गया।

एक पुस्तक जिसका शीर्षक है, 'स्पेशल कम्पाइलेशन ऑन टिबेटन नेशनेल्टीस : 1965-1985' (तिब्बती राष्ट्रीयताओं का विशिष्ट संग्रह 1965-1985), उसमें एक चीनी अधिकारी ने "ति० स्वा० क्षे०" में चीन द्वारा तिब्बती भाषा के अध्ययन को हतोत्साहित करने की नीति की निन्दा की है। उसका कहना है, "तिब्बती अध्यापक और जो तिब्बती भाषा में अनुवाद कर सकने वाले बहुत कम लोग मिलते हैं। इसके परिणाम स्वरूप तिब्बती भाषा सिखाने अथवा चीनी और तिब्बती में एक साथ सरकारी दस्तावेज जारी करने में अत्यधिक कठिनाई आने लगी है। तिब्बत के अनेक अधिकारी तिब्बती भाषा को अच्छी तरह पढ़ लिख नहीं सकते, न ही वे साम्यवादी दल की नीतियों को तिब्बती भाषा में जनता तक पहुँचा सकते हैं।"

तिब्बती विद्या सम्बन्धी चीनी संस्थान के 1991 के एक प्रकाशन में चिंगहाई राष्ट्रीयता विश्वविद्यालय में कनिष्ठ प्रवक्ता के पद पर काम करने वाले संझे ने लिखा, "लोगों के एक वर्ग का मानना है कि तिब्बती भाषा के प्रयोग से आर्थिक विकास में बाधा पड़ेगी...... स्थानीय अधिकारियों ने यह निर्णय लिया है कि केवल चीनी भाषा को ही प्रयोग किया जाए और उसे पढ़ाया जाए। यह नीति अनेक वर्षों से लागू है। परिणाम यह कि लोग न तिब्बती में लिख सकते हैं और न ही चीनी में। परन्तु आर्थिक जड़ता बनी हुई है।"

चीनी अधिकारी तिब्बत में शिक्षा के क्षेत्र में मूलभूत सुविधाएं विकसित करने के विरोधी हैं। 1985 से तिब्बतियों को उच्च शिक्षा देने के कुछ प्रयास किए गए हैं परन्तु यह कार्य अधिकाधिक तिब्बती छात्रों को चीन में शिक्षा के लिए भेजकर किया गया है न कि तिब्बत में उच्च शिक्षा की सुविधाएं बढ़ा कर।

मेधावी तिब्बती छात्रों को तिब्बत के स्कूलों से निकाल कर चीनी स्कूलों में भेज दिया जाता है। तिब्बती स्वाभाविक रूप से इस नीति का विरोध करते हैं क्योंकि यह उसकी संस्कृति को नीचा दिखाने का प्रयास है। दिवंगत पंचेन लामा का कहना था कि तिब्बती बच्चे चीन में पढ़ कर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से कट जाएंगे।

'इन्साईड द ट्रेज़र हाऊस' (ख़जाने के भीतर) के लेखक कैटरिओना बॉस ने जो कि 1985 में ल्हासा में अंग्रेजी के अध्यापक थे, लिखा, ''आजकल चार हजार तिब्बती विद्यार्थी चीन में पढ़ रहे हैं। निश्चय ही शैक्षिक दृष्टि से इन छात्रों को लाभ हो रहा है। तिब्बत के तुच्छ साधनों को देखते हुए अल्पावधि में तिब्बतियों को शिक्षित करने का यह प्रभावी ढंग हो सकता है। परन्तु यह नीति 1950 से चल रही है। अब कम संख्या में छात्रों को चीन भेजने और तिब्बत में आधारभूत सुविधाएं बढ़ाने के स्थान पर चीन सरकार ने 1993 तक दस हजार तिब्बती छात्रों को चीन में शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजने का निर्णय लिया है।''

''जिन तिब्बतियों से हम मिले उनमें से अधिकांश को लगता है कि यह उनकी सांस्कृतिक पहचान के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। अधिकाधिक युवा तिब्बती जब वापिस अपने देश लौटते हैं तो वे या तो अपनी परम्पराओं से अपरिचित होते हैं या इनके लिए मन में घृणाभाव लिए रहते हैं। कुछ लोग इसे तिब्बती सांस्कृतिक मूल्यों को भीतर से नष्ट करने के षड़यन्त्र के रूप में देखते हैं।''

## निर्वासित तिब्बतियों की उपलब्धियां

चीन इन बात पर बल देता है कि आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े तिब्बतवासियों को सभ्य बनाने के लिए तिब्बत में उसकी उपस्थिति आवश्यक है यदि इन्हें अकेले छोड़ दिया जाए तो तिब्बती अपने मामलों की देखरेख में सक्षम हैं, समृद्ध निर्वासित तिब्बत समुदाय इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

1959 से निर्वासित तिब्बत सरकार, मेजबान भारत सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने तिब्बतियों की शिक्षा पर 150 करोड़ से भी अधिक रूपए खर्च किए हैं। निर्वासित तिब्बत सरकार अपने बजट का 65% हिस्सा अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च करती है। इसमें सन्यासियों की शिक्षा पर किया गया खर्च शामिल नहीं है।

आजकल नेपाल, भूटान और भारत में बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए बनें विहारों और मठों में 11,000 से भी अधिक भिक्षुक और भिक्षुणियां हैं। भारत में अनेक संस्थान विनष्ट होने की कगार पर पहुँचे तिब्बती संस्कृति के अंगों की रक्षा के लिए खोले गए हैं। उत्तर प्रदेश के बनारस में उच्चतर तिब्बती विद्या संस्थान, तिब्बतियों और हिमालय क्षेत्र के अन्य छात्रों को शिक्षित करता है जिनमें से अनेक तिब्बती स्कूलों और उच्च शिक्षा के विभिन्न संस्थानों में कार्य करते हैं। इनमें से कुछ विश्व के विभिन्न भागों में फैले 700 से अधिक धार्मिक और सांस्कृतिक तिब्बती केन्द्रों में कार्य करते हैं। तिब्बत के मूल धर्म बॉन का मुख्यालय पुन: भारत के एक राज्य हिमाचल प्रदेश में खोला गया है।

धर्मशाला स्थित तिब्बती औषध एवं नक्षत्र विज्ञान का संस्थान विश्व भर के लोगों को चिकित्सा की सुविधा प्रदान करता है। यहाँ तिब्बती छात्रों को औषध विज्ञान और नक्षत्र विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती है। इस संस्थान के स्नातक अब नेपाल, भारत, भूटान एवं अन्य भागों में बनी तिब्बती बस्तियों में सेवा-कार्य करते हैं।

धर्मशाला स्थित तिब्बती ग्रन्थों और पुरालेखों के संग्रहालय एवं दिल्ली स्थित तिब्बत हाऊस में विदेशी छात्रों को तिब्बती इतिहास, भाषा और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। 1992 तक इनसे 5000 विदेशी शोध-छात्रों को सहायता दी जा चुकी थी।

'तिबेतन इन्स्टीच्यूट ऑफ परफोरमिंग आर्टस' (तिब्बत का ललित कला संस्थान, धर्मशाला) जिसे टीपा कहा जाता है ने परम्परागत तिब्बती नृत्य नाटिकाएं, नृत्य, गीत और संगीत को सुरक्षित रखा है और इनका मंचन अत्यधिक सफलता के साथ विदेशों में किया है। भारत, नेपाल और भूटान में स्थित स्कूलों के अनेक कला अध्यापकों का प्रशिक्षण यहीं पर हुआ है।

धर्मशाला स्थित तिब्बती सांस्कृतिक प्रैस तथा अन्य तिब्बती प्रकाशन केन्द्रों ने तिब्बती धर्म सूत्रों कग्यूर और तेंग्यूर को प्रकाशित कर सुरक्षित किया है। इसके साथ ही अन्य अनेक परम्परागत तिब्बती धर्म ग्रन्थों और प्रकाशनों को भी बचाया है।

आज भारत, नेपाल, और भूटान में 84 तिब्बती स्कूल हैं जहां 26,000 छात्र पढ़ते हैं। इनमें से 17 में आवास की व्यवस्था है और 7 अन्य में हास्टल बने हैं। इनके अतिरिक्त 55 पूर्व प्राईमरी स्कूल हैं।

निर्वासित सरकार की नियोजन परिषद द्वारा तैयार आँकड़ों के अनुसार 6 से 17 वर्ष की आयु के लगभग 92% तिब्बती बच्चे स्कूलों में जा रहे हैं जिनमें से 84% तिब्बती बच्चे स्कूलों में पंजीकृत हैं। इन स्कूलों में 1280 अध्यापक हैं तथा अध्यापक छात्र अनुपात 1 : 20 है। सभी तिब्बती बच्चों के लिए स्कूल शिक्षा नि:शुल्क है। मेधावी छात्रों को स्नातक तथा व्यवसायिक शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। जबकि अन्यों को व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। 1992 तक 3000 निर्वासित छात्रों ने विश्वविद्यालय स्तर की पढ़ाई पूरी कर ली थी। प्रतिवर्ष 400 से 500 छात्र अपनी उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूर्ण करते हैं। इनमें से 200 से 250 तक छात्र भारत या विदेशों में उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश लेते हैं।

आज निर्वासितों को मिलने वाली शिक्षा से तिब्बती डाक्टर, प्रशासक, पी०एच०डी०, एम०फिल०, इंजीनियर, स्नातनोत्तर शिक्षा प्राप्त अध्यापक, पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्त्ता, वकील, कम्पयूटर कार्यक्रम निर्माता आदि तैयार हुए हैं। अपनी शिक्षा पूरी करने के पश्चात् निर्वासित सरकार के पदों पर अथवा अन्य संस्थानों में काम करते हैं। निर्वासित तिब्बत सरकार के 99% अधिकारियों की शिक्षा-दीक्षा निर्वासन काल में ही भारत में हुई है।

## निष्कर्ष

वर्षों से हज़ारों युवा तिब्बती और उनके माता-पिता कठिनाई भरी, कष्टकर यात्राओं के बाद भारत आते रहे हैं जहां पर उन्हें उपयोगी और नि:शुल्क शिक्षा की एकमात्र किरण दिखाई पड़ती है। चीन और तिब्बत पहुँचे

प्रथम आस्ट्रेलियाई मानवाधिकार प्रतिनिधिमण्डल ने भी लिखा, ''युवा लोगों ने शिक्षा प्राप्ति की अपनी इच्छा प्रकट करते हुए कहा कि उनके सामने एक ही विकल्प है कि वे भारत में बसे अपने समुदाय से सम्पर्क स्थापित करें और भारत पहुँच जाएं जहां पर अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी शिक्षा सर्वसुलभ और नि:शुल्क हैं।''

1979 के बाद से 5,000 भिक्षुक और भिक्षुणियां अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए तिब्बत से भाग कर भारत आ चुकी हैं। इनके अतिरिक्त 5 से 15 वर्ष की अवस्था के 3,000 शरणार्थियों को स्कूलों में भर्ती करवाया गया है तथा अन्य 1,000 को जो कि 15 से 25 वर्ष की आयु के बीच हैं, भारत के विभिन्न स्कूलों में भर्ती करवाया गया है।

यदि शिक्षा विषयक चीन के दावे सच्चे होते तो इन तिब्बतियों के लिए अपने घर-बार, माता-पिता को छोड़कर भारत भाग आने की आवश्यकता न होती। यह जानकर कि निर्वासित तिब्बत सरकार के स्कूलों में इतने तिब्बती विद्यार्थी पढ़ रहे हैं और यह चीनी शिक्षा-व्यवस्था की पोल खोलता है तो चीनी सरकार ने 1995 में तिब्बती अभिभावकों को अपने बच्चों को वापिस तिब्बत बुलाने की आज्ञा जारी की और ऐसा न होने पर दण्ड की धमकी दी। परन्तु जैसा अपेक्षित था, तिब्बतियों ने इस आज्ञा को पूरी तरह अनदेखा कर दिया।

चीनी न केवल तिब्बत में शैक्षिक सुविधाएं विकसित करने में कोई रूचि नहीं रखते बल्कि वे यह भी नहीं चाहते कि तिब्बती लोग विदेश जाकर अपनी शैक्षिक योग्यता बढ़ाएं। वे इसके मार्ग में अवरोधक खड़े करते हैं।

# 7
# धर्म और राष्ट्रीय पहचान

तिब्बत का प्राचीनतम धर्म बॉन है जिसके संस्थापक पश्चिमी तिब्बत में शांगशुंग के रहने वाले शेनराब मिवो थे। बौद्ध धर्म के आगमन के पश्चात् यह धर्म कमजोर पड़ गया परन्तु आज भी तिब्बतियों का एक वर्ग भारत और नेपाल में इस धर्म का पालन करता है। टाशी मेनरी, युंगडुंगलिंग और खारना जो कि तिब्बत में हैं बॉन धर्म के कुछ प्रमुख मठ हैं। अपने ऐतिहासिक विकास के दौरान बॉन धर्म में बौद्ध धर्म की अनेक विशेषताएं आ गई हैं। इसके साथ ही तिब्बती बौद्ध धर्म ने भी बॉन धर्म से बहुत कुछ सीखा है।

तिब्बत में बौद्ध धर्म सातवीं शताब्दी में फैला। राजकीय संरक्षण पाकर यह पूरे तिब्बत में फैल गया। 1642 में दलाई लामा द्वारा सत्ता सम्भालने के पश्चात् धर्म और राजनीति का सुन्दर संतुलन स्थापित हुआ। तब से लेकर आने वाली साढ़े तीन शताब्दियों तक दस दलाई लामा आध्यात्मिक और सांसारिक शक्तियों के पुंज रहे हैं।

तिब्बती शासकों द्वारा निरन्तर बौद्ध धर्म को संरक्षण देने तथा इसके उपरान्त धार्मिक शासकों के तिब्बत में सत्ता में बने रहने से देश और लोगों पर इसका व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा। तिब्बत में बौद्ध धर्म केवल आस्था का प्रश्न ही नहीं रहा बल्कि यह तिब्बत की सम्पूर्ण सभ्यता और संस्कृति पर छाया है और तिब्बती जीवन का सार रहा है। बौद्ध धर्म तिब्बतियों के जीवन में व्याप्त है और उन्हें जोड़ने वाले उस सामाजिक ताने-बाने का निर्माण करता रहा है, जो उन्हें इस धरती से जोड़ता है। तिब्बत में लोगों और राष्ट्र को बाँधने वाले सारे बंधनों में सबसे मजबूत बौद्ध धर्म का बन्धन ही रहा है।

सदियों से उच्चतम शिक्षा प्राप्त तिब्बती लोग इस धर्म के अध्ययन, व्यवहार, व्याख्या, संरक्षण में लगे रहे और उन्होंने तिब्बती सांस्कृतिक परम्परा

से जुड़े एशिया वासियों को जिनमें मंगोल भी आते हैं, इस धर्म की शिक्षा दी और इसकी सामाजिक, अध्यात्मिक प्रासंगिकता को स्पष्ट किया।

चौदहवें दलाई लामा के शब्दों में कहें तो, ''इस प्रकार बौद्ध धर्म ने तिब्बत के इतिहास का रुख मोड़ कर तिब्बत का कायाकल्प किया। पीढ़ियों से तिब्बती बुद्धिजीवियों ने एक ऐसी समृद्ध संस्कृति को विकसित किया जो कि मूल बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और दर्शन के अत्यधिक निकट थी। सदियों की कठोर मेहनत के परिणाम स्वरूप इसका अद्वितीय विकास हुआ जो कि विश्व के देशों की साहित्यिक और सांस्कृतिक विकास की उपलब्धियों में अद्वितीय है।''

विहार, मन्दिर और मठ पूरे तिब्बत के गांवों और कस्बों में विद्यमान थे जिनमें बौद्ध भिक्षुक या भिक्षुणियां स्थाई रूप से निवास करते थे। विशाल बौद्ध मठ जो कि संन्यासियों के शहरों जैसे लगते थे विकसित हुए जैसे डेपुंग, सेरा और गदेन ल्हासा में, टाशील्हुन्पो शिगाचे में, साक्या में साक्या मठ, मध्य तिब्बत में चुरफु और मिन्डोलिंग, लबरांग टाशी-क्यील आम्दो में, गदेन जम्पालिंग छाम्दो में तथा लिथांग गोन्चेन आदि ज्ञान के उच्च-केन्द्र बने। प्रत्येक तिब्बती घर में पूजा की वेदी होती थी।

1959 में कम से कम 6,259 बौद्ध मठ थे जिनमें 5,92,558 बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां रहती थीं। इन धार्मिक केन्द्रों में सोने चांदी के लाखों मूर्तियां और कलात्मक वस्तुएं विद्यमान थीं जिनमें हीरे जवाहरात जड़े थे। इसी प्रकार बहुमूल्य धातु से बने लाखों छोरतेन (स्तूप) भी यहां थे। बौद्ध धर्म के पवित्र ग्रन्थों के अतिरिक्त ये मठ साहित्य, औषध विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र, कला और राजनीति के ग्रन्थों के तिब्बतियों के खजाने भी थे।

तिब्बत की राष्ट्रीयता की पहचान अनिवार्य रूप से बौद्ध धर्म से जुड़ गई थी। बौद्ध लोक साहित्य और शिक्षाएं लोगों के जीवन, उत्सवों, अवकाशों, काम करने के आदर्शों, पारिवारिक काम धन्धों और राष्ट्रीय विषयों को प्रभावित करती थी। चीन द्वारा अपने अधीन किए जाने से पूर्व तिब्बत एक स्वतन्त्र एवं गौरवशाली बौद्ध राष्ट्र रहा।

तिब्बत में मुसलमानों का भी एक व्यवस्थित समुदाय था जिनकी अपनी मस्जिदें थी। चीनियों के हाथों इन्हें भी नुक्सान हुआ। इसके अतिरिक्त थोड़े से

लोग हिन्दू धर्म और इसाई धर्म को मानने वाले भी थे। उन सबको समान अधिकार प्राप्त थे और उनके प्रति सहिष्णुता का व्यवहार होता था।

## धार्मिक स्वतन्त्रता पर आघात ( 1949-1979 )

प्रारम्भ में चीन सरकार ने घोषित किया था कि जब तिब्बत को चीन में पूरी तरह मिलाने की प्रक्रिया जारी रहेगी तब भी धार्मिक क्रिया कलापों पर बन्धन नहीं लगाया जाएगा। तिब्बती धर्म और परम्पराओं की रक्षा की उसकी औपचारिक शपथ को 1951 में हस्ताक्षरित ''सत्रह सूत्रीय समझौते'' में भी दुहराया गया था। इस ''समझौते'' में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि दलाई लामा के परम्परागत स्थान, शक्तियों और कार्यों को बदला नहीं जाएगा और ''धार्मिक आस्थाओं की स्वतन्त्रता की नीति जो कि चीनी लोगों की राजनीतिक परामर्शदात्री समिति में पास की गई है उसकी रक्षा की जाएगी।''

परन्तु चीनियों ने शीघ्र ही तिब्बत की परम्परागत समाज-व्यवस्था और धर्म को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। लोगों को बताया गया कि, ''धर्म अन्ध विश्वास है। इसलिए न केवल धर्म में आस्था नहीं होनी चाहिए बल्कि तुम्हें इसकी निन्दा भी करनी चाहिए।'' चीन के प्रारम्भिक आश्वासनों और संविधान द्वारा तिब्बतियों को धार्मिक स्वतन्त्रता का आभास मात्र दिलाया गया था परन्तु तिब्बती धर्म को नष्ट करने का उनका पक्का इरादा प्रारम्भ से ही स्पष्ट था।

चीन सरकार ने घोषणा की : ''चीन की साम्यवादी पार्टी का मानना है कि उसके सिद्धान्त और धर्म एक साथ, एक ही समय में नहीं रह सकते।........ इन दोनों (विज्ञान और धर्म) में अन्तर प्रकाश और अन्धकार, झूठ और सच के अन्तर की तरह है। विज्ञान और धर्म की परस्पर विरोधी विश्व-दृष्टियों में सामंजस्य की बिल्कुल कोई संभावना नहीं है।''

यह साम्यवादी दृष्टि सर्वव्यापक थी। माओ-चे-तुंग के अपने शब्दों में, ''.....परन्तु निश्चय ही धर्म ज़हर है। इसमें दो बड़े दोष हैं : यह जाति की उपेक्षा करता है............... (और) राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध करता है। तिब्बत और मंगोलिया को इसने पूरी तरह विषाक्त किया है।''

1950 के मध्य तक चीनियों ने अनुभव कर लिया कि तिब्बत पर उनके नियन्त्रण में धर्म सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए 1956 के प्रारम्भ से ही तथाकथित ''प्रजातान्त्रिक सुधारों'' को पहले खाम और आमदो में और बाद में (1959 से) मध्य तिब्बत में लागू किया गया। बौद्ध मठ और मन्दिरों से सभी मूल्यवान सामग्री चुरा ली गई और उन्हें धीरे-धीरे गिरा दिया गया।

पहले खनिज पदार्थों के पारखी धार्मिक स्थानों से कीमती हीरे-जवाहरात निकालने आए। उसके पश्चात् धातुविद आए जिन्होंने विशेष रूप से मंगाए मिलिट्री के ट्रकों में कीमती सामग्री को लाद कर दूर भेज दिया। मठों को डायनामाइट से उड़ा दिया गया लकड़ी के शहतीरों तथा खम्बों को उठा ले गए। मिट्टी की मूर्तियों में कीमती हीरे पाने के लालच में उन्हें भी तोड़ डाला गया। अन्त में बचे खुचे पत्थर और लकड़ी के टुकड़ों को उठवा दिया गया। सचमुच सैकड़ों टन धार्मिक मूर्तियों, थंका (कपड़े पर बने चित्र) धातु की कलात्मक वस्तुएं एवं अन्य मूल्यवान पदार्थ चीन भेज दिए गए जहां से या तो उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पुरानी वस्तुओं के पारखियों को बेचा गया या उन्हें पिघला कर धातु निकाल ली गई।

1982-83 में जब तिब्बतियों का एक दल तिब्बती कलात्मक वस्तुओं को एकत्र करने चीन पहुँचा तो बीजिंग के एक व्यापारी ने बताया कि ''अधिकांश तिब्बती कलात्मक वस्तुएं जो कि चीन में ले आए नष्ट हो गई हैं। मूर्तियों और धार्मिक क्रियाओं में प्रयुक्त सोने-चांदी के पदार्थों को पुनः कभी नहीं देखा गया। सोने का पानी चढ़ी ताम्बे की, कांसे की, लाल ताम्बे की, और पीतल की वस्तुओं को जहाज में लाद कर लुयुन भेज दिया गया जहां से उन्हें अंततः शंघाई, सिठुआन, ताईयुन, यीजिंग तथा त्यानजिन आदि में स्थित घातु गलाने के कारखानों को बेच दिया गया। बीजिंग से लगभग पांच किलोमीटर दूर बहुमूल्य धातुओं के कारखाने शी-यू किंग-शू-ताई ने ही 600 टन तिब्बती कलात्मक वस्तुओं को खरीदा।'' इस दल ने पाया कि लगभग सारी कलाकृतियों को दूसरे कारखानों ने पहले ही पिघला दिया है।

धर्मस्थलों को भ्रष्ट करने और नष्ट करने के साथ-साथ धर्म की सार्वजनिक रूप से निन्दा की गई तथा धार्मिक लोगों को सार्वजनिक रूप से निन्दा

और उपहास का पात्र बनाया गया। धार्मिक ग्रन्थों को जला कर खाद के रूप में डाल दिया गया; पवित्र मणि-पत्थरों को (ऐसी स्लेटें जिन पर पवित्र मन्त्र खुदे रहते हैं) शौचालय और पैदल रास्तों में प्रयोग किया गया, बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों को सार्वजनिक रूप से काम-क्रिया करने के लिए विवश किया गया और उन्हें ''चमत्कार'' दिखाने के लिए कह कर मजाक उड़ाया गया; नष्ट मठों और मन्दिरों को सूअरों के बाड़ों में बदल दिया गया, भूख से मरते भिक्षुओं और भिक्षुणियों को चीनी जेलों में कहा गया कि वे ''महात्मा बुद्ध से भोजन लें।''

## सांस्कृतिक क्रान्ति से पूर्व का विनाश

चीनी दावों के विरुद्ध तिब्बती धर्म और संस्कृति का बड़ा हिस्सा 1955-61 में नष्ट किया गया न कि सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के दौरान। यह बात तथाकथित ''ति० स्वा० क्षे०'' के उप-प्रधान भुछुंग द्वारा 17 जुलाई 1987 की अपनी प्रैस कांफ्रेस में कही गई जब उसने माना कि जो थोड़ा सा बचा था उसे ''चार प्राचीनों को नष्ट कर दो'' के नारे का साथ नष्ट कर दिया गया।

तिब्बत के 6,259 मठों और भिक्षुणी ग्रहों में से 1976 तक मात्र आठ बचे। जो मठ नष्ट किए गए उनमें सातवीं शताब्दी की साम्ये मठ भी था जो कि तिब्बत में बना पहला मठ था। गेलुगपा के सबसे प्राचीन और पवित्रतम संन्यासी विश्वविद्यालय गदेन, साक्यों का मुख्य केन्द्र साक्या, कर्ग्युद की सबसे पवित्र मठ चुरफु, नियंग्मापा का अत्यधिक प्रसिद्ध मठ मिंडोलिंग, बॉन धर्म का प्रचीनतम एवं सबसे प्रसिद्ध मठ मेनरी भी नष्ट किए गए मठों में से एक था। 5,92,558 भिक्षुओं, भिक्षुणियों, रिंपोछे (अवतारी लोगों) और डाग्पाओं (तान्त्रित साधुओं) में से 1,10,000 को यंत्रणाएं देकर मार डाला गया और 2,50,000 से अधिक को भिक्षुओं के वस्त्र त्यागने के लिए विवश किया गया।

तिब्बत-विद्या के संस्थान की प्रथम बैठक में जो बीजिंग में 1988 में हुई थी स्वर्गीय पंचेन लामा ने तिब्बती धर्म के विनाश के विषय में कहा था, ''तिब्बतियों के रहने के क्षेत्रों में मठों का विनाश शत प्रतिशत था। 99% प्राय: पूरी तरह नष्ट हो गए। जो सात या आठ बचे उन्हें भी कुछ क्षति अवश्य

पहुँची। जो बचे उनमें 'पोताला महल' की हालत सबसे अच्छी थी परन्तु उसे भी क्षति पहुँची थी। इसलिए मैं कहता हूं कि क्षति 100% थी।''

## 1979-1994 : धार्मिक स्वतन्त्रता, कर्मकाण्डी दिखावा

1979 में अत्यधिक प्रचारित ''उदारीकरण'' की प्रक्रिया तिब्बत में प्रारम्भ की गई जिसमें धार्मिक स्वतन्त्रता का दिखावा भी शामिल था। इसमें चुनिंदा धर्मस्थलों की सीमित मुरम्मत, लोगों को सीमित धार्मिक कर्मकाण्ड करने की आज्ञा तथा दण्डवत करना, धार्मिक स्थल की परिक्रमा करना, घी के दीपक अर्पित करना, मन्त्रोच्चार, धर्मचक्र घुमाना, सुगन्ध जलाना तथा पूजा के झण्डे लहराना शामिल था। ये पूजा के बाहरी कार्य हैं। परन्तु बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार या तो निषिद्ध है या फिर जब आज्ञा दी भी जाती है तो बहुत नियन्त्रित रहती है।

बौद्ध धर्म का सार तत्व है मानसिक और अध्यात्मिक विकास जो कि प्रबुद्ध लामाओं के संसर्ग में रहकर गहन अध्ययन से ही सम्भव है। इसी से धर्म की समझ और व्यवहार का ज्ञान होता है। परन्तु चीनी इसे अपने प्रचार में अन्ध विश्वास और अन्ध आस्था के क्रिया कलापों के रूप में प्रचारित करते हैं न कि उस रूप में जैसा वह है। यह एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक दर्शन है। दलाई लामा ने अपने 10 मार्च 1987 के वक्तव्य में कहा था, ''तिब्बत में तथाकथित धार्मिक स्वतन्त्रता का अर्थ है कि धर्म को मात्र श्रद्धा और कर्मकाण्ड के रूप में माना जाए। बौद्ध दर्शन को पढ़ाने और पढ़ने पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष बन्धन लगे हैं। इस प्रकार बौद्ध धर्म अन्ध-विश्वास के रूप में परिवर्तित हो जाता है और साम्यवदी इसी रूप में धर्म की व्याख्या करते रहे हैं।''

आजकल चीन की नीति यह है कि तिब्बत में संस्कृति और धर्म क्रमश: अपनी स्वाभाविक मौत मर जाएं जिससे तिब्बत को एक असभ्य और अन्ध विश्वासी राष्ट्र करार दिया जा सके और इस प्रकार वे यह आशा करते हैं कि ''तिब्बत को मुक्त करने'' की अपनी धारणा का औचित्य सिद्ध कर सकेंगे और ''तिब्बत पर अपने अधिकार'' को उचित ठहरा सकेंगे।

## पुनर्निर्माण और नवीनीकरण

चीन सरकार द्वारा तिब्बत के स्मारकों का पुनर्निर्माण अत्यधिक चुनिंदा है और उसका लक्ष्य अपने राजनीतिक और आर्थिक लक्ष्यों की पूर्ति करना है। इनका उपयोग भ्रमणार्थियों को आकर्षित करने के लिए अजायबघरों के रूप में होता है, यह धर्म और संस्कृति के जीवन्त संस्थान नहीं बन पाते। साथ ही चीनी दावों के विपरीत "राज्य द्वारा प्रायोजित" पुनर्निर्मित मठ भी तिब्बतियों की पहल, श्रमदान और धन से ही बने हैं।

सरकार द्वारा स्वीकृत आर्थिक सहायता उस खर्च का बहुत छोटा सा हिस्सा है। दूसरी ओर मठों से मिलने वाले प्रवेश शुल्क और चढ़ावे को चीन सरकार ले जाती है।

मठों का पुनर्निर्माण और नवीनीकरण धार्मिक मामलों के चीनी ब्यूरो की स्वीकृति मिलने पर ही किया जा सकता है। यह स्वीकृति बहुत आनाकानी और लाल फीताशाही में लगने वाली देरी के बाद दी जाती है जिसके बीच तिब्बतियों को बार-बार अपील करनी पड़ती है और अधिकारियों के भाषण सुनने पड़ते हैं जिनमें वे धर्म से 'राष्ट्रीय हितों' पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों का वर्णन करते हैं। थोड़े से भिक्षुक जिन्हें मठों में प्रवेश की आज्ञा दी जाती है भ्रमणार्थियों को दिखाने के नमूनों के रूप में और अधिकतर मठों के चौकीदारों के रूप में कार्य करते हैं न कि धार्मिक विद्यार्थियों या पुरोहितों के रूप में।

स्वतन्त्र तिब्बत में प्रमुख बौद्ध विहारों में स्थित संन्यासी विश्वविद्यालय एशिया के आन्तरिक भागों से आने वाले असंख्य छात्रों के लिए सांस्कृतिक और शैक्षिक केन्द्रों का काम करते थे। इनमें से प्रत्येक में तीन से दस हज़ार छात्र होते थे और यहां का कठोर पाठ्यक्रम 18 वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ होता था और 45 वर्ष की अवस्था में पूर्णता को पहुँचता था। इन विश्वविद्यालयों की मूल इकाई इसके महाविद्यालय होते थे और प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ कम से कम दो महाविद्यालय संबद्ध होते थे। इन महाविद्यालयों में अपना प्रशासन, अध्यापक और पुस्तकालय रहते थे। सदियों तक सन्यासियों

के यह महाविद्यालय आलोचनात्मक एवं सृजनात्मक आध्यात्मिक चिन्तन के विकास में लगे रहे।

## धार्मिक संस्थानों पर चीन सरकार का नियन्त्रण

चीन महाविद्यालयों को जो कि विश्वविद्यालयों के लिए मूलभूत इकाइयां हैं अपने परम्परागत ढंग से चलने की आज्ञा नहीं देता । उसने प्रत्येक विश्वविद्यालय में कितने भिक्षुक रहेंगे इसकी सीमा भी निश्चित कर दी है। चीनी आधिपत्य से पूर्व सेरा में 7,997 भिक्षुक पंजीकृत थे, अब इसे मात्र 300 भिक्षुक लेने की आज्ञा है, डेपुंग में दस हज़ार भिक्षुक होते थे अब इसे केवल चार सौ छात्र लेने की आज्ञा है, और गदेन में जहां 5600 भिक्षुक़ रहते थे वहां अब 150 ही लिए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त मठों के दैनिक क्रिया कलाप भी नौकरशाही की भूल-भुलइयों में बंधे हैं। जैसे कि संयुक्त अग्रिम कार्य विभाग, धार्मिक मामलों का ब्यूरो, तिब्बती-बौद्ध संगठन प्रजातान्त्रिक नियोजन समिति, राजनीतिक शिक्षा एवं खोज कार्य सम्बन्धी निरीक्षण दल, सुरक्षा अंग आदि विभाग बने हैं।

मठों में प्रवेश के लिए चीन ने आंशिक रूप में निम्नलिखित मापदण्ड निर्धारित किए हैं: छात्र कम से कम अठारह वर्ष की आयु का हो, अपने देश और साम्यवादी दल से ''प्यार'' करता हो, उसके माता-पिता की औपचारिक सहमति हो, मठ के प्रजातान्त्रित नियोजन समिति की अनुमति हो, स्थानीय अधिकारियों की स्वीकृति हो, गांव अथवा प्रान्तीय अधिकारियों की स्वीकृति हो, जन सुरक्षा ब्यूरो से अनुज्ञा प्राप्त हो, छात्र और उसके अभिभावकों की ''अच्छी राजनीतिक पृष्ठभूमि'' हो, किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पला-बढ़ा हो, (अर्थात खाम और आमदो क्षेत्र के तिब्बतियों को मध्य तिब्बत स्थित मठों में प्रवेश नहीं मिलता), मार्क्सवाद पढ़े, उसे पता हो कि अध्यात्मवाद और भौतिकवाद परस्पर विरोधी हैं, आदि।

## केवल ''राजनीतिक दृष्टि से ठीक'' लोगों को ही प्रवेश

मठो और विहारों में प्रवेश देने का प्रमुख चीनी मापदण्ड यह है कि, ''साम्यवादी दल और सरकार को समर्थन देने वाले उग्र देशभक्तों को प्रत्येक

धर्म में प्रवेश कराया जाना चाहिए। वे ऐसे लोग हों जो दृढ़तापूर्वक समाजवादी रास्ते को स्वीकार करें और राष्ट्रीय तथा जातीय एकता का संरक्षण करें।'' और यह भी कि, ''विहारों में प्रवेश परीक्षा होनी चाहिए और प्रवेश ईमानदार, देशभक्त युवकों को ही मिले..... जिनका एक स्तर तक सांस्कृतिक विकास हो चुका हो।'' ये सिद्धान्त स्पष्ट रूप से पहले ही दो चीनी दस्तावेजों में निर्धारित किए जा चुके हैं, दस्तावेज है: 'हमारे राष्ट्र के समाजवादी दौर में धार्मिक प्रश्नों पर हमारी मूल दृष्टि और नीति' तथा 'मन्दिरों के प्रजातान्त्रिक प्रबन्धन के नियम' आदि। एक अन्य संगठन 'तिब्बती-बौद्ध मार्गदर्शन समिति' भी स्थापित की जा रही है जो, ''ति० स्वा० क्षे०, चिंगहाई, गांसू, सिठुआन और युनान (चीन में सम्मिलित आमदो और खाम के तिब्बती क्षेत्र) में बौद्ध धर्म के पालन का निरीक्षण करेगी। इसके मुख्य कार्य होंगे, सरकारी नीतियों को लागू करना, बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों को देशभक्तिपूर्ण शिक्षा के सांचे में ढालना तथा मठ के प्रबन्धन का निरीक्षण करना।''

उपरोक्त तरीकों के अतिरिक्त अन्य अनेक अव्यक्त और रहस्यमय तरीके भी धार्मिक आज़ादी को दबाने के लिए अपनाए जाते हैं जो कि अनजान व्यक्ति की पकड़ में नहीं आते। इनमें आते हैं धर्म के विरोध में निरन्तर छपने वाली पुस्तकें और नाटकीय प्रदर्शन, धार्मिक शिक्षाओं पर आंशिक बन्धन, तिब्बती युवकों को मार्क्सवाद में दीक्षित करते हुए धर्म विरोधी स्वर की प्रमुखता, मठों में निश्चित पाठ्यक्रम का अभाव, पाठ्य पुस्तकों और अध्यापकों की मठों में कमी, भिक्षुओं को भ्रमणार्थियों के सम्मुख प्रदर्शन के लिए विवश करना, मठों में सेना और अर्द्ध-सैनिक बलों को रखना, स्वतन्त्र विचार रखने वाले संदेहास्पद लोगों को कैद कर यन्त्रणाएं देना, मठों में जासूस छोड़ना, कार्य निरीक्षण दलों द्वारा मठों में राजनीतिक शिक्षा देना और दलाई लामा द्वारा रचित अराजनैतिक प्रार्थनाओं तक पर प्रतिबन्ध लगाना।

इन्हीं प्रतिबन्धों के चलते 28 सितम्बर 1988 को पंचेन लामा ने घोषणा की थी कि, ''तिब्बत (ति० स्वा० क्षे०) के धार्मिक मामलों में प्रशासनिक हस्तक्षेप समाप्त हो तथा जिन क्षेत्रों में तिब्बती रहते हैं वहां के धार्मिक मामलों पर तिब्बतियों का अधिकाधिक नियन्त्रण हो।''

## निष्कर्ष

यह ठीक है कि अब चीन मठों पर बम नहीं बरसाता और न उन्हें नष्ट करने के लिए लाल सैनिक भेजता है परन्तु उसका लक्ष्य पूर्ववत् वही है कि किसी तरह तिब्बत के धर्म और संस्कृति को पूरी तरह नष्ट कर दिया जाए।

यह बात उप-प्रान्तीय प्रचार समिति गांज़े (कारज़े) द्वारा फरवरी 1990 में तैयार किए गए दस्तावेज ''धार्मिक आजादी विषयक नीति'' से स्पष्ट है जिसमें कहा गया है, ''हमारी समाजवादी व्यवस्था के विकास के साथ ही साथ धर्म के विनाश की सामाजिक व्यवस्था ने भी जन्म लिया।'' एक और सरकारी दस्तावेज जिसका शीर्षक है, ''राष्ट्रीयताओं और धर्म विषयक नीति'' जो 1991 में प्रकाशित हुआ था, कहता है, ''हमें उन सबके विरुद्ध कार्य करना चाहिए जो राष्ट्र को राष्ट्रीयता और धर्म के नाम पर विभाजित करने का कार्य करते हैं। धर्म और राष्ट्रीयता के नाम पर चलाए गए किसी भी आन्दोलन के विरुद्ध सख्त निर्णय लेने में किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए और ऐसा करते समय राज्य की राजनीतिक, नैयायिक यहां तक कि सैनिक शक्तियों का प्रयोग भी किया जाना चाहिए।''

तिब्बती धर्म को मानने वालों को निरन्तर सजाएं देकर चीन संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र का ही उल्लंघन नहीं कर रहा बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र की धाराओं का भी उल्लंघन कर रहा है जिसमें धर्म और विश्वास के आधार पर हर प्रकार के भेदभाव और असहिष्णुता को अनुचित कहा गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग की न्यायिक जाँच समिति ने 1959 और 1960 की अपनी रिपोर्टों में कहा है, ''समिति ने पाया कि तिब्बत में जातीय विनाश के कुकृत्य हुए हैं, ताकि तिब्बतियों को एक धार्मिक समुदाय के रूप में नष्ट कर दिया जाए। इन कृत्यों पर किसी परम्परागत दायित्व से मुक्त होकर भी सोचें तो भी ये कार्य जातीय विनाश के ही ठहरते हैं।''

# 8

# जनसंख्या स्थानान्तरण एवं नियन्त्रण

1949 की चौथी जेनेवा कन्वेंशन के अनुसार आधिपत्य जमाने वाले किसी देश द्वारा, अधीन किए राष्ट्र की भूमि पर अपने नागरिक बसाना अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का उल्लंघन है। परन्तु यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे अनेक आक्रान्ता, उपनिवेशवादी प्रशासक एवं सर्वसत्तावादी अपनाते आए हैं ताकि अपने शासन के प्रतिरोध को कुण्ठित कर सकें और अनाधिकृत रूप से हथियाई जमीन पर अपना नियन्त्रण रख सकें। हिटलर ने बड़े पैमाने पर जनसंख्या स्थानान्तरण की योजनाएं बनाई थीं और स्टालिन ने ऐसी अनेक योजनाओं का अनुसरण किया जिसका दुःखद परिणाम हमने पुराने सोवियत संघ में देखा।

आज चीन भी तिब्बत में इसी नीति का अनुसरण कर रहा है। चीन द्वारा आक्रमण के प्रारम्भिक दिनों अर्थात 1949 से ही वह इस नीति पर चल रहा है जो आज तिब्बती जनता और राष्ट्र के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनती जा रही है। एक ओर जहाँ चीन से आकर तिब्बत में बसने वालों की बाढ़ सी आ गई हैं वहीं पर चीन तिब्बतियों की जनसंख्या कम करने के लिए अनेक दमनकारी तरीके अपना रहा है।

इस दोमुँही जनसंख्या नीति का लक्ष्य यह है कि तिब्बती अपने ही देश में तुच्छ अल्पसंख्यक बनकर रह जाएं जिससे वे चीनी प्रशासन को कोई महत्त्वपूर्ण चुनौती न दे सकें। यही कारण है कि कुछ लोगों ने चीन की इस नीति को चीन का 'अन्तिम समाधान' शीर्षक दिया है।

## जनसंख्या स्थानान्तरण : स्पष्ट सरकारी नीति

श्वेत पत्र में चीन कहता है, ''एक अन्य झूठ यह है कि अनेक हान वंशी लोग तिब्बत में आकर बस गए हैं जिससे तिब्बत के मूल निवासी अल्पसंख्यक बन गए हैं।''

परन्तु पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि यह कथन असत्य है। जनसंख्या स्थानान्तरण का प्रथम प्रमाण स्वयं माओ-चे-तुंग द्वारा 1952 में 'सी०पी०सी० की केन्द्रीय समिति द्वारा तिब्बत में कार्य करने सम्बन्धी जारी निर्देशों' से होता है। तिब्बत के पश्चिमी प्रान्त में जिसे बाद में 'तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र' का नाम दिया जाना था, पाँच गुनी जनसंख्या वृद्धि का सुझाव देते हुए माओ-चे-तुंग कहते हैं, "तिब्बत के पास विशाल भूक्षेत्र है परन्तु जनसंख्या बहुत कम है। इसकी जनसंख्या वर्तमान 20 या 30 लाख से 50 या 60 लाख कर दी जाए और बाद में एक करोड़ तक पहुँच जाए।" [*Renmin Ribao*, November 22, 1952].

29 अगस्त 1959 को 'अन्तर्राष्ट्रीय विधिवेत्ता आयोग' की न्यायिक जाँच समिति के समक्ष एक कथन में दलाई लामा ने कहा, "1955 में ल्हासा जाने से ठीक पहले हम लयू-शाओ-ची से मिलने गए। उन्होंने पंचेन लामा से कहा कि तिब्बत विशाल देश है जिसकी जनसंख्या बहुत कम है। चीनियों को वहाँ बसाया जा सकता है।"

चीन द्वारा तिब्बत पर अधिकार कर लेने के पश्चात् 1960 में चीन के प्रधानमंत्री चाओ-एनलाई ने कहा, "चीनी संख्या में कहीं अधिक हैं और आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से विकसित भी, परन्तु जिस भूमि पर वे रहते हैं उसमें न तो अधिक सिंचाई हो सकती है और न ही भूगर्भ में उतने खनिज रह गए हैं जितने कि उनकी निकट राष्ट्रीयताओं के लोगों की भूमियों में हैं।"

फरवरी 1985 में दिल्ली स्थित चीनी दूतावास ने घोषणा की कि उसकी सरकार की इच्छा "पर्यावरण असंतुलन और जनसंख्या न्यूनता" को बदलने की है। यह कार्य न केवल तिब्बत बल्कि उसके साथ लगते सभी क्षेत्रों में किया जाएगा। स्थानीय लोगों को चीनी लोगों के आगमन का स्वागत करना चाहिए और आने वाले 30 वर्षों में उनकी जनसंख्या इन क्षेत्रों में छह करोड़ तक हो जाएगी।" इस घोषणा में आगे चलकर कहा गया, "यह कसकर किया आकलन है जबकि तथ्य यह है कि यह वृद्धि 30 वर्ष में दस करोड़ तक भी जा सकती है।" [*Movement Westward*, Reference Material No. 2, Embassy of the People's Republic of China, New Delhi, February 4, 1985].

दो वर्ष पश्चात् जून 1987 में देंग शियाओ पिंग ने स्वीकार किया कि चीनी लोगों को तिब्बत में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है क्योंकि ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र की 20 लाख जनसंख्या उसे विकसित करने में सक्षम नहीं है।'' [*Deng Xiaoping, during his meeting with ex-US President Jimmy Carter*, June 29, 1987; Reuter's report, Beijing, June 30, 1987]

## ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में चीनी जनसंख्या

1983 के पश्चात् चीनी विस्थापित मध्य तिब्बत में बड़े पैमाने पर बसने लगे। मई 1984 में 'बीजिंग रेडियो' ने घोषणा की, ''ति० स्वा० क्षेत्र में निर्माण कार्यों को बढ़ावा देने के लिए अग्रिम दस्तों के रूप में 60,000 से अधिक मजदूर वहां प्रतिदिन पहुँच रहे हैं। (दिनों की संख्या नहीं दी गई।) उन्होंने प्रारम्भिक काम शुरू कर दिया है। ये विद्युत विभाग, स्कूलों, होटलों, सांस्कृतिक संस्थाओं, मिलों और कारखानों में निर्माण का कार्य करेंगे।'' [*Radio Beijing,* 1700 hrs. May 14, 1984]

1985 की गर्मियों में ति० स्वा० क्षेत्र में मुख्यता सिठुआन प्रान्त से 60,000 कर्मी और पहुँच गए। [*China's Population*, Beijing, 1988] 1991 में चीन ने यह घोषणा की कि ''सम्पूर्ण चीन से तकनीकी कर्मचारी काम में हाथ बंटाने के लिए आ रहे हैं और लगभग तीन लाख कर्मचारी आने को तैयार हैं।'' [*Beijing Review*, January 21-27, 1991]

टाईम्स ऑफ इण्डिया (दिल्ली) की रिपोर्ट के अनुसार 27 सितम्बर, 1988 को ति० स्वा० क्षेत्र के उप प्रधान माओ-रुबाई ने कहा कि सैनिकों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में दस लाख चीनी आकर बसे हैं।

1985 में अकेले ल्हासा में 50,000 से 60,000 तक असैनिक चीनी बसे थे। 1985-88 के बीच चीनी अप्रवासियों की बाढ़ से ल्हासा की जनसंख्या दुगुनी हो गई। ति० स्वा० क्षेत्र की सरकार द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि इन अप्रवासियों के कारण तिब्बती लोगों को कठिनाईयां आई। मार्च 1989 में चीनी राष्ट्रीय जन कांग्रेस के उपप्रधान डापो डवांग जिग्मे

ने कहा, ''आजकल अनेक चीनी अप्रवासी दुकानदारों के आकर बसने से (जिनकी संख्या 1,00,000 लगभग ल्हासा में ही है) जन सुरक्षा के लिए अत्यधिक खतरा हो गया है।''

## खाम और आमदो में चीनी जनसंख्या

'तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र' के बाहर तिब्बती क्षेत्र में वर्तमान का पूरा चिंगहाई प्रान्त, तथा खाम और आमदो के कुछ हिस्से जो सिठुआन, गांसू और युन्नान में मिला लिए गए हैं, आते हैं। इस पूर्वी तिब्बती क्षेत्रों में ही चीन की जनसंख्या सर्वाधिक है। यहां पर चीनियों का बसना 1949 में चीनी जन मुक्ति सेना के आने से ही प्रारम्भ हो गया था। 1959 में जब ल्हासा में चीनी सरकार स्थापित हुई तब तक पूर्वी भागों में चीनियों का बसना खतरनाक सीमा तक जा पहुँचा था। 1962 से यह आव्रजन अत्यधिक बढ़ गया जबकि हज़ारों अप्रवासियों को यहां बसने के लिए भेजा जाने लगा जो कि ''राज मजदूर और तकनीशियनों'' के रूप में आए।

क्योंकि इनकी कोई आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती थी इसलिए तिब्बती इसे अपने अर्थ-तन्त्र पर अतिरिक्त बोझ समझते थे और इस नीति का अर्थ यही लगाते थे कि जानबूझ कर उनके राष्ट्र का चीनीकरण किया जा रहा है। स्वर्गीय पंचेन लामा के अनुसार, ''तिब्बत में एक चीनी को रखना, चीन में उसे रखने से चार गुणा महंगा है। तिब्बत इनकी भोजन-व्यवस्था पर क्यों खर्च करे? ...... असंख्य निकम्मे लोगों को यहां भेजे जाने से तिब्बत ने बहुत कष्ट उठाया है। चीनी जनसंख्या तिब्बत में कुछ हजार से प्रारम्भ होकर आज कई गुणी हो गई है।'' [28 मार्च, 1987 को नेशनल पीपल्स कांग्रेस की उपसमिति में पंचेन लामा द्वारा तिब्बत की स्थिति पर दिए गए भाषण से उद्धृत]

चीन की राष्ट्रीय जनगणना में 1990 में 'ति० स्वा० क्षेत्र' से बाहर चीनी जनसंख्या 49,27,369 बताई गई है जिसमें थोड़े से मंगोल भी शामिल हैं। परन्तु यह कहा जाता है कि हर दो पंजीकृत चीनियों के पीछे एक अपंजीकृत चीनी इस क्षेत्र में अतिरिक्त रहता है। इस का अर्थ यह है कि 'ति० स्वा० क्षेत्र' के बाहर आमदो और खाम में लगभग 74 लाख चीनी रहते हैं।

## तिब्बत में प्रवेश के लिए चीनियों को प्रोत्साहन

चीनी लोगों को तिब्बत में आकर बसने के लिए अपने सरकारी कर्मचारियों एवं अन्य नागरिकों को चीन सरकार बहुत से लाभ देती है।

चीनी प्रशासन का यह कथन चीनी लोगों को सेवा की बेहतर शर्तें दिए जाने का औचित्य सिद्ध करता है कि "विकसित क्षेत्रों से आकर बसने वाले (चीनी लोग) लोगों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे मांस और जौ की सत्तू (चा़म्पा) पर गुज़ारा करेंगे। उन्हें अपने बच्चों के लिए अच्छे घर, अस्पताल, सिनेमा और स्कूलों की आवश्यकता है।" [*The Poverty of Plenty*, Wang and Bai, London. p. 148]

निवास, स्वास्थ्य-सेवा, चीन जाने की छुट्टी, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक सुविधाएं आदि उस खर्चीली प्रक्रिया का हिस्सा हैं जिनके अधीन चीनियों को तिब्बत में बसने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अन्य महंगी सरकारी सहायता में ऊँचे क्षेत्रों का भत्ता तथा ट्रकों में गेहूँ और चावल लाने के खर्चे शामिल हैं।

चीनी अप्रवासियों को तिब्बत में 87% अधिक वेतन मिलता है। वे जितना अधिक समय तिब्बत में रुकते हैं उनका लाभ भी बढ़ता जाता है। चीनी कर्मचारियों के लिए चीन की अपेक्षा तिब्बत में छुट्टियां कहीं लम्बी होती हैं। अठारह मास काम करने के पश्चात् वे सरकारी खर्चे पर तीन माह की छुट्टियां अर्जित करते हैं।

चीनी उद्यमियों को विशेषकर-छूट तथा कम ब्याज पर ऋण मिलता है जबकि अपने ही देश में उद्यम स्थापित करने के लिए तिब्बतियों को मुश्किल से ही स्वीकृति-पत्र मिलता है।

## "ति० स्वा० क्षे०" जनसंख्या स्थानान्तरण को बढ़ावा देने के लिए खुला क्षेत्र

1992 में चीन ने तिब्बत की अर्थ व्यवस्था का उदारीकरण करते हुए 'विदेशी विनियोजकों' के लिए इसे खोल दिया। वास्तव में बाहरी उद्यमियों को आकर्षित करने के नाम पर यह और अधिक चीनियों को यहाँ बसाने का

षड़यन्त्र है। चीन सरकार अपनी विशाल घुम्मकड़ आबादी को तिब्बत में बसने के लिए प्रोत्साहित कर रही है, यह तथ्य चीन की जनसंख्या नीति से पुष्ट होता है।

'ति० स्वा० क्षेत्र' में चीनी गांव और कस्बे बसाने की तीव्र गतिविधियों का पता चलता है। इन क्षेत्रों में डोमो (यातुंग), इमागांग, फैन्पो, चेथांग, तूलुंग, नेयमो, कोंगपो नियांगठी और मेलडो ग्यामा आते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि 'तिगर्त' जल विद्युत परियोजना में विस्थापित हुए चीनियों को भी तिब्बत के इन क्षेत्रों में बसाया जाएगा।

## जन्म दर नियन्त्रण, बलात् गर्भपात एवं बन्ध्याकरण

1984 से चीन ने तिब्बती दम्पतियों पर मात्र दो बच्चे पैदा करने की नीति लागू की। यह घोषित किया गया कि 'ति० स्वा० क्षेत्र' की मात्र 12% आबादी इसके घेरे में आती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में बसे और घुम्मकड़ लोगों पर यह नीति लागू नहीं होती परन्तु वास्तव में तीसरे बच्चे के जन्म पर 1,500 से 3,000 युआन (400 से 800 डालर) के जुर्माने की घोषणा की गई। अतिरिक्त बच्चों का नाम राशन कार्ड पर दर्ज नहीं किया जाता था और मजदूर की मजदूरी आधी कर दी जाती थी या तीन से छह महीने के लिए रोक दिया जाता था।

ऐसे दमनकारी तरीके अनेक ढंगों से अपनाए गए और आज भी अपनाए जा रहे हैं। 5 नवम्बर, 1987 को 'ति० स्वा० क्षेत्र' के परिवार नियोजन अधिकारी श्रीमती छेरिंग डोलकर ने एक सभा में कहा, "1,04,024 स्त्रियां बच्चों को जन्म देने के आयु वर्ग में हैं जिनमें से 76,220 विवाहित हैं जिनमें से 22,634 का पहले ही आप्रेशन हो चुका है जोकि बच्चों को जन्म देने के आयु वर्ग में पड़ने वाली स्त्रियों का 30% है। 1985 में जब से 'ति० स्वा० क्षेत्र' में ग्रामीण क्षेत्रों और चरागाहों में जन्म दर नियन्त्रण के विज्ञान का प्रचार हुआ है तब से जन्म दर में और लोगों के मानसिक स्तर में पर्याप्त परिवर्तन आया है। 1986 में नियांगठी, लहोखा और शिगाचे में 19% स्त्रियों का बन्ध्याकरण हुआ।"

शिगाचे के नागरिक मामलों के विभाग के अनुसार जुलाई 1990 में एक दल शिगाचे के जच्चा-बच्चा अस्पताल से एक दूरस्थ एवं निर्धन क्षेत्र भुचुंग जिले में निरीक्षण हेतु पहुँचा। यह पाया गया कि इस छोटे से क्षेत्र में 387 स्त्रियों का गर्भ-निरोधक आप्रेशन किया जा चुका था। यह दल परिवार नियोजन के लिए दस जिलों में गया था जहां उन्होंने 2,419 में से 1,092 स्त्रियों का आप्रेशन कर दिया।

लहोखा के ग्याचा जिले में एक डाक्टर छेरिंग योडोन ने जो कि जच्चा-बच्चा केन्द्र में काम करती थी कहा कि उसके जिले में बच्चों को जन्म देने के आयु वर्ग में 4,000 से अधिक स्त्रियां हैं जिनमें से 1,000 से अधिक परिवार नियोजन के उपायों को अपनाए हुए हैं और 700 का बन्ध्याकरण हो चुका है।

खाम और आमदो में इससे भी अधिक दमनात्मक तरीकों को अपनाया जा रहा था। उदाहरण के लिए ''गांसू पारिग तिब्बती स्वायत्तशासी जिले'' में 1983 में 2415 स्त्रियों का बन्ध्याकरण किया गया जिनमें से 82% तिब्बती महिलाएं थीं। 1987 में ज़ाचू जिले के ''गांज़े तिब्बती स्वायत्तशासी हिस्से'' में 764 महिलाओं का बन्ध्याकरण किया गया, उसमें से 660 तिब्बती महिलाएं थीं। गस्ती परिवार नियोजन दल ग्रामीण क्षेत्रों और चरागाहों में घूमते हैं और वे महिलाओं को जबरदस्ती पकड़ कर उनका गर्भपात अथवा बन्ध्याकरण आप्रेशन करते हैं। यहां तक कि गर्भ की उन्नत अवस्था की महिलाओं का भी गर्भपात करवा कर उनका बन्ध्याकरण किया जाता है।

सामान्यत: तिब्बत में परिवार नियोजन कार्यक्रम स्थान और समय के अनुसार बदलते रहते हैं और उनमें मनमानी होती है। ये कार्यक्रम स्थानीय अधिकारियों के उत्साह पर अधिक निर्भर करते हैं, जिन्हें इस नीति को लागू करने के पूर्णाधिकार दिए जाते हैं।

इस विषय में श्वेत पत्र में लिखा है, ''तिब्बत में मात्र 12% लोगों पर परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू होते हैं। परिवार नियोजन की प्रक्रिया में सरकार 'मुख्यत: प्रचार, स्वेच्छा एवं सेवा' के सिद्धान्तों का पालन करती है तथा किसी प्रकार की बलात् गर्भपात का विरोध करती है।''

ये शब्द प्राप्त प्रमाणों के सर्वथा विपरीत पड़ते हैं।

## तिब्बती जनसंख्या

चीन प्रायः तिब्बत के इस दावे का मज़ाक उड़ाता है कि तिब्बत की जनसंख्या 60 लाख है। राष्ट्रीयताओं के मामलों के कमीशन के नीति निर्धारण एवं कानून विभाग के निदेशक यांग हाऊदी पूछते हैं "ये साठ लाख आए कहां से? क्या ये आकाश से गिरे?" भले ही तिब्बत में आज एक भी स्वतन्त्र जनगणना रिपोर्ट नहीं है ऐतिहासिक दस्तावेज बताते हैं कि चीनी आक्रमण से पूर्व तिब्बत की जनसंख्या कम से कम 60 लाख थी। चीनी कहते है कि तिब्बत की जनसंख्या 40 लाख से कुछ ही अधिक है। परन्तु स्वयं चीनियों द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1959 में तिब्बत की जनसंख्या 60 लाख से अधिक थी।

चीन के राजकीय गणना ब्यूरो के अनुसार तिब्बत के पश्चिमी आधे हिस्से (जिसे बाद में ति० स्वा० क्षेत्र कहा गया) में 1,273,969 लोग 1959 में बसे थे, पूर्वी हिस्सा जिसे तब चीन ने शिकांग नाम दिया था, की आबादी 3,381,064 थी। 'चिंगहाई' और अन्य तिब्बती क्षेत्र जिन को 'गान्सू' क्षेत्र में मिला दिया था, की आबादी 1,675,534 थी। [*People's Daily,* Beijing, November 10, 1959] यदि इन तीनों संख्याओं का योग किया जाए तो यह 6,330,567 हो जाता है।

फरवरी 1988 में बीजिंग की राज्य-परिषद के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान के निदेशक, हुआन शियांग ने कहा कि, "तिब्बत के वर्तमान 60 लाख निवासियों में से ति० स्वा० क्षेत्र में केवल 20 लाख रहते हैं और शेष 40 लाख लोग चीन के अन्य प्रान्तों में रहते हैं।" [*Beijing Review,* Vol. 31, No.7 & 8]

## निष्कर्ष

चीन की जनसंख्या स्थानान्तरण की नीति के कारण तिब्बती लोग आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक और सामाजिक क्षेत्रों में पिछड़ गए हैं। 1980 के प्रारम्भ में निर्वासित तिब्बत सरकार का अनुमान था कि सम्पूर्ण तिब्बत में चीनी जनसंख्या 75 लाख है। आज यह संख्या इससे कहीं अधिक है।

खाम और आमदो में अधिकांश उपजाऊ क्षेत्र चीनियों को दे दिया गया है और अधिक से अधिक तिब्बती बन्जर क्षेत्रों में धकेल दिए गए हैं। लगभग सभी प्रमुख प्रशासनिक पद चीनियों के पास हैं। तिब्बत में वानिकी और खनन के क्षेत्र में विकास से जो नौकरियां निकल रही हैं वहां पर चीनियों को अधिमान दिया जाता है।

विशेषाधिकार प्राप्त चीनियों के बसने से जो आर्थिक प्रभाव पड़ा है उसे निम्न आंकड़ों से देखा जा सकता है : 1992 में बाखोर को छोड़कर ल्हासा शहर में बने 12,227 जलपान गृहों और दुकानों में से तिब्बतियों के पास केवल 300 थे। दक्षिणी खाम में चावा पाशो में 1992 में चीनी व्यापारिक संस्थान 133 थे जबकि तिब्बतियों के मात्र 15 थे। उस वर्ष अन्य क्षेत्रों में भी स्वामित्व का अनुपात ऐसी ही था: छामदो में 748 : 92, पावो ठामो में 229 : 3 था। आमदो के शहरी क्षेत्रों में हालत और भी खराब है जहां पर एक ब्रिटिश पत्रकार के अनुसार तिब्बती लोग भ्रमणार्थियों के आकर्षण के लिए अजायबघर की चीज बनकर रह गए हैं।

# 9
# तिब्बत के पर्यावरण की दशा

एशिया की बड़ी नदियों का प्रमुख स्रोत तिब्बत है। उसमें विश्व के उच्चतम पर्वत शिखर, विश्व का सबसे विशाल पठार, प्राचीन वन और मानव से अछूती घाटियां हैं।

तिब्बतियों के आर्थिक और धार्मिक मुल्यों के कारण ही पर्यावरण को पूरी तरह सुरक्षित रखने वाले क्रिया-व्यापारों का विकास हुआ। 'उचित आजीविका' में उनके विश्वास के कारण उनमें संतोष का भाव उत्पन्न हुआ और अनावश्यक उपयोग को प्रश्रम नहीं मिला। पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों के अनावश्यक शोषण का भी यह विरोध करता है क्योंकि इससे अन्य जीवों और उनके शरण स्थलों को हानि पहुँचती है। बहुत पहले 1642 में पाँचवें दलाई लामा ने पर्यावरण और जीवों के संरक्षण के लिए आदेश जारी किया था। तबसे अब तक प्रति वर्ष ऐसे आदेश दिए जाते रहे हैं।

चीन द्वारा तिब्बत को अपना उपनिवेश बना लिए जाने के पश्चात् तिब्बत की परम्परागत पर्यावरण संरक्षण प्रणाली चरमरा गई और पर्यावरण विनाश का भयंकर रूप सामने आने लगा। इसका विशेष प्रभाव चरागाहों, ऊपजाऊ जमीनों, वनों, जल-स्रोतों और जंगली जीवों पर दिखाई पड़ा।

## चरागाहें, उपजाऊ भूमियां और चीन की कृषि नीति

तिब्बत का 70 % भाग चरागाहों के रूप में है। चहागाहें पशु--पालन पर आधारित अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार हैं। घरेलू पशुधन की संख्या सात करोड़ है और लगभग दस लाख चरवाहे उन पर निर्भर हैं। तिब्बत के घुमक्कड़ कबीलों ने अपने थोड़े से घास के मैदानों के साथ परम्परागत रूप से ही अपने को ढाला हुआ है। चरागाहों के वार्षिक प्रयोग, ड्री और याक तथा भेड़ और

बकरियों के उनके झुण्डों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, तथा वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर चहागाहों के भरण-पोषण योग्य प्रयोग के स्तर को बनाए रखना तिब्बतियों की परम्परागत आदतें हैं।

गत चार दशकों में इन महत्त्वपूर्ण चरागाहों का विनाश हुआ है। सीमान्त जमीनों को अप्रवासी चीनियों के लिए कृषि योग्य बनाने से चरागाहों को खतरा बढ़ा है। इससे बड़े पैमाने पर रेगिस्तान का विस्तार हुआ जिससे जमीनें कृषि और पशुओं के चरने योग्य नहीं रह गई हैं। इस समस्या से विशेषकर आम्दो के घास के मैदानों का विनाश हुआ है।

घास के मैदानों के चारों ओर बाढ़ लगाने से स्थिति और भी खराब हुई है तथा तिब्बती चरवाहों को छोटी चरागाहों में सिमटना पड़ा है और इससे उनकी परम्परागत प्रव्रजन की प्रणाली भी प्रभावित हुई है।

केवल आम्दो के माछु जिले में ही दस हज़ार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का एक तिहाई हिस्सा चीनी सेना के घोड़ो, भेड़ों और अन्य पशुओं के चरने के लिए घेर दिया गया है। इसी प्रकार डापा, गोलोक, और ''चिंगहाई'' की कुछ बढ़िया चरागाहों को चीनियों के लिए आरक्षित कर दिया गया है।

परम्परागत रूप से कृषि क्षेत्र नदियों के किनारे सिंचित क्षेत्र हैं जिसमें खाम की नदी घाटी, ऊच्यांग की च्यांगपो घाटी और आम्दो की माछु घाटी आदि आते हैं। मुख्य फसल जौ है जिसे अन्य फलीदार पौधों के साथ उगाया जाता है। परम्परागत कृषि-व्यवस्था में सहज नियम विद्यमान हैं जैसे फसलों की हेराफेरी, मिश्रित फसलें तथा समय-समय पर फसलों का न होना जोकि कमजोर पर्वतीय पर्यावरण का अंग है। ऊच्यांग में औसतन 2,000 किलो प्रति हैक्टर तथा आम्दो और खाम की नीची घाटियों में इससे भी ज्यादा उपज होती है। रूस और कैनेडा में ऐसे ही जलवायु में उपज से यह ज्यादा है क्योंकि वहां क्रमश: 1,700 किलोग्राम और 1,800 कि० ग्राम प्रति हैक्टर है।

दिन प्रतिदिन बढ़ते चीनी सैनिकों और नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा अन्न के निर्यात के परिणाम स्वरूप तीखी ढलानों और सीमान्त भूमियों को भी कृषि के अधीन लाया गया है जिससे चीनियों को प्रिय गेहूँ का उत्पादन बढ़ सके (चीनी, तिब्बती जौ की अपेक्षा गेहूँ अधिक पसन्द

करते हैं)। साथ ही संकर बीजों, रासायनिक खादों और कीटनाशकों का प्रयोग भी बढ़ा है। गेहूँ की नई किस्मों पर रोग का हमला निरन्तर होता रहा है और 1979 में तो गेहूँ की पूरी फसल नष्ट हो गई थी। चीनी लोगों के आने से पूर्व तिब्बतियों को अन्न उत्पादन बढ़ाने की इतनी गम्भीर आवश्यकता कभी अनुभव नहीं हुई थी।

## वन और उनका विनाश

1949 में तिब्बत का 2,21,800 वर्ग किलो मी० का क्षेत्र प्राचीन वनों से ढका था। 1985 तक वह मात्र 1,34,000 वर्ग कि०मी० रह गया जो कि पहले का लगभग आधा है। अधिकांश वन तिब्बत के निचले दक्षिणी क्षेत्र में नदी-घाटियों के ऊपर तीखी ढलानों पर एकान्त में उगे हैं। इनमें प्रमुख उष्ण कटिबंधीय सूईदार वृक्षों के वन हैं जिनमें स्प्रूस, फ़र, पाईन, लार्च, साइप्रस, बर्च और ओक जाति के पेड़ हैं। वन रेखा दक्षिणी आर्द्र की 3,800 मीटर की ऊँचाई से अर्द्ध शुष्क उत्तर के 4,300 मीटर की ऊँचाई तक जाती है।

तिब्बत के अधिकांश पेड़ बहुत पुराने हैं जिनमें 200 वर्ष से अधिक पुराने पेड़ अधिक हैं। औसत तने का घनत्व 272 क्यूबिक मीटर प्रति हैक्टर है परन्तु ऊचांग और अन्य प्राचीन वन क्षेत्रों में 2300 क्यूबिक मीटर प्रति हैक्टर भी है जो कि सूईदार पेड़ों की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक घनत्व है।

जैसे-जैसे तिब्बत के नए क्षेत्रों में सड़कें बन रही हैं, वन नष्ट हो रहे हैं। सभी सड़कें चीन की जन मुक्ति सेना अथवा उसकी सहायता से तथा वन-विभाग के इंजीनियरों के दल द्वारा बनाई जाती हैं और इन्हें बनाने का खर्चा तिब्बत के "विकास" के खाते में डाला जाता है। जब सड़क बनने लगती है और प्राचीन वनों तक पहुँचती है तो पेड़ गिराकर क्षेत्र खाली किया जाता है जिससे विशाल पर्वतीय क्षेत्र नंगे हो रहे हैं। 1985 तक 24,420 लाख घन फुट इमारती लकड़ी काटी गई जो कि 1949 के वनों का 40% है और जिसका मूल्य 54 अरब अमरीकी डालर है।

तिब्बत में वन काटने के धन्धे में सबसे अधिक लोग लगे हैं, "ति० स्वा० क्षेत्र" के उपजाऊ कोंग्पो क्षेत्र में ही 20,000 चीनी सैनिक और तिब्बती कैदी पेड़ काटने और लकड़ी ढोने में लगे हैं।

1949 में डापा आम्दो में 22 लाख हैक्टेयर भूमि वनों के अधीन थी, उस समय उसकी लकड़ी का भण्डार 34 करोड़ घन मीटर था। 1980 के दशक में यह घट कर 11.7 लाख हैक्टेयर रह गया जिसमें लकड़ी का भण्डार मात्र 18 करोड़ घन मीटर था। [*Ngapa Tibetan Autonomous Prefecture*, Sichuan Publishing House, 1985, p 149-154]

इसी प्रकार 1985 तक के तीस वर्षों में चीन ने "गानल्हो तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र" से 64 लाख 40 हजार घन मीटर लकड़ी निकाली। यदि इसे 30 सैं० मी० चौड़े और तीन मीटर लम्बे लकड़ी के लट्ठों में काटकर एक के साथ दूसरे को जोड़ कर रखा जाए तो वह दो बार पृथ्वी को ढकने के लिए पर्याप्त होगी। [*Ganlho Tibetan Autonomous Prefecture,* Gansu People's Publishing House, 1987, p. 145]

विश्व के सबसे ऊँचे और अद्‌भुत विस्तृत पठार पर निरन्तर वृक्षों का कटान और मरूस्थलों का बढ़ना जारी है। इस क्षेत्र से वातावरण की गतिशीलता और एशिया में फव्वारों की तरह बहने वाली हवाओं का प्रवाह प्रभावित होता है और वैज्ञानिकों के अनुसार यहां आने वाले परिवर्तन उत्तरी गोलार्द्ध में मौसम में अस्थिरता से सम्बद्ध हो सकते हैं।

वानिकीकरण और पेड़-पौधों का पुनः उगना, तीखी ढलानों, अत्यधिक गीली मिट्टी, दैनिक तापमान में अत्यधिक उतार चढ़ाव तथा मिट्टी की सतह के ऊँचे तापमान के कारण प्रायः असम्भव है। इन प्राकृतिक स्थितियों में पेड़ों की कटाई अपरिवर्त्तनीय विनाश की सूचक हैं।

## जल स्त्रोत एवं जलशक्ति

तिब्बत एशिया का मुख्य जलग्रहण क्षेत्र है और यहीं से एशिया की प्रमुख नदियां निकलती हैं। तिब्बत में बहने वाली अधिकांश नदियों के प्रवाह स्थिर हैं तथा उनका प्रवाह भूमिगत स्त्रोतों अथवा हिमवाहों से जल प्राप्त करता

है। पड़ोसी देशों में बहने वाली नदियों से यह पर्याप्त भिन्न है क्योंकि वहां की नदियाँ मौसमी वर्षा पर निर्भर करती हैं और उनमें जल वर्षा होने पर निर्भर करता है।

तिब्बत में प्रवाहित 90% जल उसकी सीमाओं से बाहर बह जाता है और मात्र एक प्रतिशत जल ही उसके अपने काम आता है। आज तिब्बत की नदियों में अत्यधिक मिट्टी भर गई है। माछु (ह्वांग हो अथवा पीली नदी), चांगपो (ब्रह्मपुत्र), डीछु (यांग्चे) तथा सेंगे खबाब (सिन्धु) आदि नदियां विश्व की सर्वाधिक मिट्टी भरी नदियां हैं। पूर्व में माछु नदी से लेकर पश्चिम में सेंगे खबाब तक के क्षेत्रों में मानवता का 47% हिस्सा पलता है। तिब्बत में 2000 से भी अधिक प्राकृतिक झीलें हैं जिनमें से कुछ पवित्र मानी जाती हैं और लोगों के सांस्कृतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन झीलों से कुल 35,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र घिरा है।

तीखी ढलाने और बहुतायत में मिलने वाले जल प्रवाहों के कारण तिब्बत में 2,50,000 मैगावाट जल विद्युत तैयार करने की क्षमता है जो कि विश्व में सर्वाधिक है। ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में ही 2 लाख मैगावाट जल विद्युत उत्पन्न करने की क्षमता है।

सहारा के पश्चात् तिब्बत में ही सर्वोच्च प्रति इकाई सौर ऊर्जा उत्पादन की क्षमता है जो कि औसतन 200 किलो कैलोरी प्रति सै० मी० है तथा यहाँ भू-ताप के भी पर्याप्त स्त्रोत हैं।

इन लघु और पर्याप्त मात्र में विद्यमान पर्यावरण मित्र स्त्रोतों के रहते हुए भी चीनियों ने विशालकाय बाँध बनाए हैं जैसे कि लोंग्यांग शिया, और अभी भी यह काम जारी है जैसे कि यामडोक युछो में जल विद्युत स्टेशन का निर्माण।

इनमें से अनेक प्रकल्पों का लक्ष्य तिब्बत की जल विद्युत क्षमता का दोहन करना और उसका उपयोग तिब्बत और चीन दोनों में बसे चीनी जनता और उद्योग के लिए करना है। परन्तु इन प्रकल्पों से होने वाले मानवीय विनाश, पर्यावरण विनाश एवं सांस्कृतिक विकारों की पीड़ा केवल तिब्बतियों को भोगनी पड़ेगी। एक ओर तिब्बतियों के घर उजड़ रहे हैं दूसरी ओर हज़ारों चीनी कारीगर इन बाँधों पर काम करने के लिए लाकर बसाए जा रहे हैं।

इन बाँधों का स्थानीय लोगों को कोई लाभ नहीं क्योंकि उन्हें चलाने में उनका दखल नहीं है। यामडोक युछ़ो जल विद्युत प्रकल्प को ही लें, चीनियों का कहना है कि इससे तिब्बतियों को बहुत लाभ पहुँचेगा।

सामान्यत: तिब्बतियों ने और विशेषकर स्वर्गीय पंचेन लामा और डापो डावांग जिग्मे ने इनका विरोध किया और निर्माम कार्य में प्रभावी ढंग से बाधा पहुँचाई। परन्तु चीनी इसे बनाने में जुटे रहे और आज चीनी जन मुक्ति सेना के 1500 सिपाही इसकी पहरेदारी करते हैं। किसी असैनिक को यहां जाने की आज्ञा नहीं है।

## खनिज पदार्थ एवं खनन

चीन की सरकारी स्रोतों के अनुसार तिब्बत में 126 खनिज पदार्थ विद्यमान हैं जिनमें युरेनियम, लिथियम, क्रोमाईट, तांबा, बोरेक्स, लोहे आदि का विश्व के खनिज भण्डार का बड़ा हिस्सा यहां विद्यमान है। आम्दो के तेल के क्षेत्रों में 10 लाख टन कच्चा तेल प्रतिवर्ष निकाला जाता है।

चीनियों द्वारा तिब्बत में सड़कों और संचार व्यवस्था का जो जाल फैलाया गया है उससे चीन सरकार द्वारा जंगलों और खनिज भण्डारों के भयंकर दोहन का पता चलता है। चीन के पन्द्रह में से सात मुख्य खनिज पदार्थ दस वर्ष में समाप्त हो जाएंगे तथा प्रमुख अलोह धातुओं के भण्डार प्राय: समाप्त हो चुके हैं इसलिए तिब्बत से खनिज दोहन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आने वाली शताब्दी में चीन अपने प्रमुख खनिज उत्खनन के संयन्त्र तिब्बत में ले आएगा।

तिब्बत की खानों में पर्यावरण रक्षा से साधन प्राय: अनुपस्थित हैं। इस नाजुक क्षेत्र में इससे विशेष रूप से ढलानें अस्थिर हो रही हैं भूमि नष्ट हो रही है तथा मानव स्वास्थ्य और जीवन को खतरा बढ़ रहा है।

## जंगली पशु-पक्षी

अनेक जंगली जानवर तथा पक्षी लुप्त हो गए हैं क्योंकि या तो उनके रहने के स्थान नष्ट कर दिए गए, या फिर अन्धाधुन्ध उनका शिकार किया गया और या फिर चीन के जंगली जानवरों के अवैध व्यापार के वे शिकार हो गए। ऐसे असंख्य

उदाहरण हैं जब कि चीनी सैनिकों ने जंगली याकों तथा गदहों के झुण्डों का शिकार स्वाचालित शस्त्रों से किया और उन्हें नष्ट कर दिया।

जंगली पशुओं का अनियन्त्रित शिकार आज भी हो रहा है। विदेशी धनिक असामियों के लिए ''शिकार-अभियान'' आयोजित करने के समाचार आज भी सरकारी अखबारों में छपते हैं जिनमें उन्हें दुर्लभ पशुओं के शिकार के लिए आमन्त्रित किया जाता है जिन्हें वे पुरस्कार के रूप में ले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अमरीका और पश्चिमी युरोप के धनी शिकारियों के लिए ''शिकार-अभियान'' आयोजित किए जाते हैं। ये शिकारी तिब्बती हिरण और अर्गली भेड़ जैसी विलुप्त प्रायः जानवरों की जातियों का शिकार कर सकते हैं जिन्हें सरकार ने तथाकथित रूप से सर्वाधिक संरक्षण दिया हुआ है। एक तिब्बती हिरण के शिकार के लिए 35,000 डालर, अर्गली भेड़ के लिए 23,000 डालर तथा श्वेत ओंठो वाले हिरण के लिए 13,000 डालर, नीली भेड़ के लिए 7,900 डालर तथा लाल हिरण के लिए 3,500 डालर खर्च करना पड़ता है।

वर्तमान परिदृश्य में तिब्बत के हज़ारों जंगली जानवरों की जातियां विश्व के सामने आने और अध्ययन किए जाने के पूर्व ही नष्ट हो जाएगी। इसके साथ ही तिब्बती संस्कृति में संजोए जानवरों की अमूल्य धरोहर नष्ट हो जाएगी जो कि आज के विश्व के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

चीन का श्वेत-पत्र स्वीकार करता है कि अनेक जानवर ''विलुप्त होने के कगार'' पर हैं। इस बात की पुष्टि जानवरों के संरक्षण के लिए बनी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वार 1990 में प्रकाशित लाल सूची से होती है जिसमें तीस तिब्बती जानवरों का उल्लेख है।

चीन द्वारा तिब्बती जानवरों के संरक्षण के कदम चीन में मिलाए गए तिब्बती क्षेत्रों के बहुत बाद उठाए गए जबकि मूल चीन में ये कदम बहुत पहले उठाए जा चुके थे। 1991 के अन्त तक संरक्षित क्षेत्र लगभग 3,10,000 वर्ग किलोमीटर था जो कि तिब्बत के क्षेत्रफल का लगभग 12 % है। संरक्षण के वास्तविक परिणामों को आंका नहीं जा सकता क्योंकि चीन इसमें अत्यधिक गोपनीयता बर्तता है और आंकड़ों तक हर किसी की पहुँच नहीं है।

## आण्विक तथा अन्य विषाक्त कचरे

कहा जाता है कि चीन ने तिब्बत में लगभग नब्बे आण्विक हथियार जमा किए हैं। निन्थ अकादमी, चीन की उत्तर पश्चिमी आण्विक शस्त्र अनुसंधान और डिजाइन अकादमी, जो कि तिब्बत के उत्तर-पूर्वी आम्दो क्षेत्र में स्थित है, ने अज्ञात मात्रा में तिब्बती पठार पर रेडियो धर्मिता युक्त कचरा फैंका है।

वाशिंगटन डी० सी० में स्थित इन्टरनैशनल कैम्पेन फॉर तिब्बत की रिपोर्ट के अनुसार, ''कचरा फैंकने के तरीके पूर्णतया लापरवाही के थे। पहले कचरा उथले, बिना ढके गढों में डाला गया...... निन्थ अकादमी द्वारा उत्पन्न रेडियो धर्मिता कचरे की मात्रा और प्रकृति अभी भी अज्ञात है...... 1960 और 1970 के दशक में आण्विक कचरे को लापरवाही पूर्वक एवं अस्त-व्यस्त रूप में फैंका गया। अकादमी का आण्विक कचरा अनेक रूपों में हो सकता था- पतला कीचड़ तथा ठोस या गैस के रूप में कचरा। पतला कीचड़ अथवा ठोस कचरा आस पास के क्षेत्र में ही होगा।'' [*Nuclear Tibet,* Washington, D.C., p.18]

चीन की सरकारी घोषणाओं ने यह पुष्ट किया है कि तिब्बत में विश्व के सबसे बड़े युरेनियम के भण्डार हैं। ऐसी सूचना मिली है कि तिब्बत में ही युरेनियम को संसाधित किया जाता है और आम्दो में डापा के निकट गांवों के अनेक लोग संदूषित पानी पीने से मर गए। स्थानीय लोगों ने विकृत मनुष्यों और पशुओं के जन्म की सूचना भी दी है।

1991 में ग्रीन पीस ने इस बात का भण्डाफोड़ किया कि चीन, अमरीका की नगरपालिकाओं का विषाक्त कचरा तिब्बत में लाकर खाद की तरह प्रयोग करना चाहता था। इस प्रकार के विषाक्त कचरे के प्रयोग से अमरीका में रोग फैले थे।

## निष्कर्ष

तिब्बत की जटिल पर्यावरण समस्या को सतही परिवर्तनों से हल नहीं किया जा सकता। अनुपजाऊ भू-खण्डों को प्राकृतिक संरक्षित क्षेत्र घोषित

करने अथवा लोगों के लिए कानून बनाने से कुछ न होगा जबकि वास्तविक दोषी सरकार है यह समस्या हल नहीं होगी। चीन सरकार में यह राजनीतिक इच्छा शक्ति होनी चाहिए कि वह तिब्बतियों के भूमि पर अधिकार वापिस कर और उन्हें अपने परम्परागत संरक्षणात्मक तरीके प्रयोग करने दे।

दलाई लामा के सपनों के अनुरूप सम्पूर्ण तिब्बत को शान्ति-क्षेत्र घोषित कर दिया जाना चाहिए जहाँ पर मनुष्य और जानवर समरसता पूर्वक रह सकें। दलाई लामा जी के कथनानुसार ऐसा तिब्बत पूर्व तरह सैन्य रहित होगा और यहां प्रजातान्त्रिक सरकार होगी तथा यहां की अर्थ-व्यवस्था में संसाधनों का दोहन इस प्रकार किया जाएगा जैसे लोगों का उचित जीवन स्तर भी बना रहे और पर्यावरण रक्षा भी हो।

अन्ततः पड़ोसी देशों के दूरगामी हितों के लिए यह आवश्यक है क्योंकि तिब्बत के पर्यावरण का प्रभाव उसकी सीमाओं से परे विशेषकर भारत, चीन, बांग्लादेश और पाकिस्तान पर भी पड़ता है। इन चार देशों में बसा विश्व की लगभग आधी जनसंख्या तिब्बत से निकलने वाली नदियों पर आश्रित है। गत दशक में इन देशों में आई भयंकरतम बाढ़ों का कारण वन-विनाश से तिब्बत की नदियों में भर रही मिट्टी को माना गया है। चीन, विश्व की छत पर अपनी वन-विनाश और युरेनियम सम्बन्धी गतिविधियों को जारी रखे है इसलिए इन नदियों की विनाश क्षमता निरन्तर बढ़ती जाएगी।

यदि तुरन्त कदम नहीं उठाए गए तो तिब्बत की जो नदियां परम्परागत रूप से खुशियां और समृद्धि लाती थी एक दिन मृत्यु और विनाश का कारण बन जाएगी।

# 10

# सैनिकीकरण एवं क्षेत्रीय शान्ति

1949 में चीन की जन मुक्ति सेना का प्रथम अग्रिम दस्ता तिब्बत में घुसा। 1950 के बसन्त में चीनी सेना की 18वीं टुकड़ी पूर्व में दार्तचड़ो (चीन दाजियनलू) तथा उत्तर पूर्व में आम्दो से तिब्बत में प्रविष्ट हुई। चीनी सेना की 14वीं डिविज़न दक्षिण पूर्व में देचेन से तिब्बत में प्रविष्ट हुई। खाम और आमदो पर अधिकार करने के पश्चात् 18वें दल के अग्रिम दस्ते ने 9 सितम्बर 1951 को ल्हासा में प्रवेश किया तथा शेष सेना 26 अक्तूबर 1951 को प्रविष्ट हुई। यह सैनिक जमाव के कार्यक्रम का प्रारम्भ मात्र था।

## तिब्बती पठार पर सैनिक विस्तार

1986 तक साम्यवादी चीनी प्रशासन ग्यारह सैनिक प्रखण्डों में विभाजित था और तिब्बत का प्रशासन 3 खण्डों में विभक्त था। 1986 में जब सम्पूर्ण चीन को सात प्रखण्डों में विभाजित किया गया तो तिब्बत को दो सैनिक खण्डों के अधीन कर दिया गया। एक दक्षिणी-पश्चिमी सैनिक क्षेत्र जिसका मुख्यालय ठेंग्दू थी, दूसरा लांज़हू सैनिक क्षेत्र जिसका मुख्यालय लांज़हू में था।

आजकल ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'', ''गांज़े (कार्ज़े) तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र'', ''अबा (डापा) तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र'', ''देचेन तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र'' तथा ''मिली तिब्बती स्वायत्तशासी जिला'', दक्षिण-पश्चिमी सैनिक क्षेत्र में पड़ते हैं। जबकि ''चिंगहाई प्रान्त'', ''गान्ल्हो तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र'' तथा ''तियानझू तिब्बती स्वायत्तशासी जिला'', लांज़हू सैनिक क्षेत्र में पड़ते हैं।

तिब्बत में चीन के वर्दीधारी सैनिक कम से कम पाँच लाख हैं। चीन द्वारा दिया गया यह आंकड़ा ''तिब्बत स्वयत्त क्षेत्र'' में मात्र 40,394 सैनिक हैं, कुप्रचार है। हमारी सूचना के अनुसार यह अढ़ाई लाख सैनिक विद्यमान हैं।

इसमें स्थानीय अर्द्धसैनिक बल शामिल नहीं हैं जिसकी स्थापना 1963 में की गई थी।

''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में छह उप सैनिक जिले हैं जहां पर दो स्वतन्त्र पैदल सैनिक डिविज़न, छह सीमा सुरक्षा रेजिमेन्टस, पाँच स्वतन्त्र सीमा सुरक्षा बटालियन, तीन तोपखान रेजिमेन्ट, तीन इंजीनियर रेजिमेंट, एक मुख्य संकेत स्टेशन और दो संकेत रेजिमेंट, तीन परिवहन रेजिमेंट, तीन स्वतन्त्र परिवहन बटालियन, चार सैनिक हवाई अड्डे, दो राडार रैजिमैंट, अर्द्ध-सैनिक बलों के दो डिविजन और एक रैजिमेंट (जिसे डी फांग जुन या 'स्थानीय सेना' कहा जाता है) तथा जन सशस्त्र पुलिस की एक स्वतन्त्र डिविज़न और छह रेजिमेन्टें हैं।

इस के अतिरिक्त 12 और ईकाईयां हैं जिन्हें ''द्वितीय तोपखाना डिविज़न'' कहा जाता है। बनाए गए अनेक हवाई अड्डों में से आजकल चार ही सक्रिय रूप से काम में लाए जा रहे हैं। जन सशस्त्र पुलिस वास्तव में चीन की जन मुक्ति सेना ही है जिसका कुछ समय पहले ही नाम बदला गया है।

'तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र' में चीन की जन मुक्ति सेना के दस्ते रुथोक, ग्यामुक (चीनी सिचेंहो), डोंगपा, सागा, डांगसो (धिंगरी), गाम्पा-ला, डोमो, छ़ोना, ल्हुंचे़ ज़ोंग, ज़युल, आदि में स्थित है। सुरक्षा की दूसरी पंक्ति शिगाचे़, ल्हासा, नगछुखा, चे़थांग, नंगारचे़ जिला, ग्याम्दा, निंग्ठी, मिलिंग, पोवो ठामो, चा़वा पोमधा तथा छाम्दो आदि में हैं। इसके अतिरिक्त चीन सिठुआन में स्थित 149 हवाई डिविज़न को भी नियमित रूप से ''तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र'' में प्रयोग करता है जैसा कि उसने 1987 में ल्हासा में हुए विद्रोह और उसके पश्चात् किया।

चीन ने तिब्बत के सैनिक जिला मुख्यालय को ठेंग्दू से ल्हासा के दक्षिण पश्चिम में स्थानान्तरित कर दिया है जो कि गोंगकार हवाई अड्डे के निकट है। ऐसी सूचना है कि ल्हासा स्थित चीनी जन मुक्ति सेना का मुख्यालय, जो कि एक किलोमीटर से भी अधिक लम्बाई में फैला है, में चीन के 'दक्षिणी-पश्चिमी सैनिक मुख्यालय' के कुछ भाग भी ल्हासा ले जाया जाएगा। नवनिर्माणाधीन भवन श्रृंखला में चालीस तीन मंजिला इमारतें हैं जिनमें से प्रत्येक में चालीस कमरे हैं जिनमें 15,000 तक लोग रह सकते हैं।

आम्दो में सबसे बड़े सैनिक शिविर शीनिंग (सिलिंग), छाबचा और गोलमुद (कारमू) में हैं। इन तीनों स्थानों पर वायुसेना के अड्डे भी हैं।

कारमू का जनविहीन विशाल मरुस्थल अब मुख्य सैनिक अड्डे के रूप में विकसित हो चुका है। सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान पर स्थित होने के कारण यह तिब्बत और पूर्वी तुर्किस्तान पर नियन्त्रण रखता है और रेल, सड़क तथा वायुमार्ग से जुड़ा हुआ है।

खाम और डापा क्षेत्रों में सैनिक जमाव लिथांग, कार्ज़े, तावू, दार्चेडो और बरखाम आदि क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। इसके साथ ही खाम क्षेत्र में राडार स्टेशन और प्रयोग में न लाए जाने वाली अनेक हवाई पट्टियां विद्यमान हैं।

## परमाणु अस्त्रों के अड्डे

तिब्बत में परमाणु अड्डे और परमाणु शस्त्रास्त्रों के निर्माण केन्द्र होने की सूचना समय-समय पर मिलती रही है। विश्वास किया जाता है कि चीन के पास धाशू (चीनी हेयान) में जो कि ''हाईबी तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र'' में हैं, परमाणु केन्द्र हैं और तोड्खोर (चीनी-हूआंग युआन) जो आमदो में है, में भी आण्विक शक्ति केन्द्र हैं।

चीन की मूलभूत शस्त्र प्रविधि (डिज़ाईन) और शोध सम्बन्धी सुविधाएं साठ के दशक के प्रारम्भ में धाशू में निर्मित की गई थीं। 'न्यूक्लियर तिब्बत' के अनुसार यह सुविधा कोकोनोर झील के निकट स्थित है। इसे उत्तर-पश्चिमी आण्विक शस्त्र-शोध एवं अभिकल्पना अकादमी अथवा ''निन्थ अकादमी'' के रूप में जानी जाती है, क्योंकि यह निन्थ ब्यूरो के अधीन है।

चीन के सम्पूर्ण आण्विक कार्यक्रम में यह सुविधा सर्वाधिक गोपनीय है और आज यह चीन का सर्वाधिक संरक्षित सैनिक शस्त्र उत्पादक कारखाना है। सातवें दशक के मध्य में चीन के सभी परमाणु बम तैयार करने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसका प्रयोग विस्फोट-विकास, रेडियोधर्मिता रसायन शास्त्र तथा आण्विक शस्त्रों से सम्बद्ध अन्य अनेक क्रियाओं से रहा है। इसमें आण्विक शस्त्रों के पुर्जे भी जोड़े जाते थे।

मिसाईल अड्डे कोकोनोर झील के दक्षिण में आम्दो में और नागछुखा के उत्तर पश्चिम में स्थित हैं।

'न्यूक्लियर तिब्बत' के अनुसार तिब्बती पठार पर प्रथम आण्विक शस्त्र 1971 में लाया गया और उसे उत्तरी आम्दो में छैदाम बैसिन में स्थापित किया गया। आजकल चीन के पास तीन सौ से चार सौ तक आण्विक हथियार हैं जिनमें से कई दर्जन तिब्बत में ही हैं। क्योंकि चीन की भूमि पर स्थित आण्विक मिसाईल गाड़ियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जा सकते हैं और दागे जा सकते हैं इसलिए उनकी ठीक गणना कर पाना कठिन है।

धाशू के पश्चिम में चीन ने सत्तरवें दशक के आरम्भ में आण्विक डी० एफ-4 मिज़ाईल रखने और प्रक्षेपण हेतु छैदाम बैसिन में एक अड्डा बनाया। डी० एफ०-4 चीन की पहली अन्तर्महाद्वीपीय प्राक्षेपिक मिज़ाईल थी। रिपोर्ट में कहा गया है कि वृहत्तर छैदाम स्थल में सुरंग में दो मिज़ाईलें भूमि पर लिटा कर रखी गई हैं। यह सुरंग प्रक्षेपण स्थल के निकट है। ईंधन और आक्सीडाईज़र अलग-अलग सुरंगों में रखे गए हैं जो प्रक्षेपण स्थल से जुड़ी हैं। छोटी छैदाम प्रक्षेपण स्थल सम्भवत: बड़े छैदाम प्रक्षेपण स्थल जैसी ही संगठित है।

वृहत्तर छैदाम के दो सौ किलोमीटर दक्षिण-पूर्व में तिब्बत में एक अन्य आण्विक प्रक्षेपण स्थल देलिंघा में बनाया गया है। यहां पर भी डी० एफ०-4 मिज़ाईलें रखी हैं और यह आमदो के लिए मिज़ाईल रेजिमेण्डल केन्द्र है जिसके साथ चार उप-प्रक्षेपण स्थल सम्बद्ध हैं। एक नई आण्विक डिविज़न आम्दो में स्थापित की गई है। कहा जाता है कि यहां चार सी०एस०एस०-4 मिज़ाईलें तैनात हैं जो कि 8000 मील (12,874 किलोमीटर) तक मार कर सकती हैं। ये युरोप, अमरीका तथा एशिया में कहीं भी दागी जा सकती हैं।

16 सितम्बर 1988 को प्रकाशित जाईफैंगजुन बाओ के अनुसार 1988 में चीन ने तिब्बत की "उच्च पहाड़ी क्षेत्रों में रसायनिक युद्ध प्रतिरोधक शस्त्रों का परीक्षण किया।" 3 जुलाई 1982 की तास की रिपोर्ट के अनुसार "चीन तिब्बत के विभिन्न क्षेत्रों में आण्विक प्रयोग करता रहा है ताकि क्षेत्र के लोगों पर रेडियोधर्मिता से पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कर सके।"

## निष्कर्ष

आण्विक शस्त्र तिब्बती संस्कृति, परम्परा और चेतना के बिल्कुल विपरीत पड़ते हैं। आज़ाद तिब्बत में सामूहिक विनाश के इन अस्त्रों के लिए कोई स्थान नहीं होगी। इसी को दृष्टि में रखकर 15 जून 1988 को दलाई लामा जी ने स्ट्रॉसबर्ग प्रस्तावों में कहा था– ''मेरे देश का अद्वितीय इतिहास और आध्यात्मिक विरासत इसे एशिया के मध्य में शान्ति के क्षेत्र की भूमिका निभाने के लिए आदर्श अवसर प्रदान करती है। एक निष्पक्ष अंतस्थ राज्य के तिब्बत की ऐतिहासिक स्थिति को पूरे महाद्वीप की शान्ति के लिए पुनः स्थापित किया जा सकता है। एशिया की शान्ति और सुरक्षा के साथ-साथ विश्व शान्ति को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। भविष्य का तिब्बत पराधीन देश न रहे जिसे दमनकारी शक्ति कुचल रही हो, जो अनुपजाऊ बन गया हो और पीड़ाओं ने जिसका चेहरा विकृत कर दिया हो। यह एक ऐसा मुक्त-क्षेत्र बन सकता है जहाँ मानवता और प्रकृति समरस होकर रहे, जोकि विश्व के अनेक तनावग्रस्त क्षेत्रों के लिए एक आदर्श बन जाए।''

# 11
# समाधान की खोज

1959 से 1979 तक निर्वासित तिब्बत सरकार और चीन सरकार के बीच किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रहा। परन्तु फिर भी दलाई लामा की यह आशा बनी रही कि चीन सरकार के साथ विचार-विमर्श और सम्पर्क स्थापना से तिब्बत समस्या का कोई समाधान निकल आएगा। 20 जून 1959 को भारत में आने पर मसूरी से दलाई लामा ने एक वक्तव्य जारी किया था -

"भले ही चीन सरकार के कार्यों और नीतियों ने तिब्बतियों में विरोध और कटुता की तीव्र भावनाएं पैदा की हैं परन्तु हम तिब्बती भिक्षु और सामान्य लोग, चीन के लोगों के प्रति कोई शत्रुता और घृणा भाव नहीं रखते।..... हमें इस बात पर बल देना चाहिए कि उचित कदम उठाकर चीन सरकार बातचीत के लिए सकारात्मक वातावरण तैयार करे जिससे शान्तिपूर्ण समाधान निकल सके।"

चीन में हो रहे पविरर्तनों के प्रकाश में 10 मार्च 1978 को भारत में बसे तिब्बतियों से दलाई लामा ने कहा था -

"चीन को चाहिए कि वह तिब्बत में रह रहे तिब्बतियों को यह अधिकार दे कि वे अपने निर्वासित माता-पिता तथा रिश्तेदारों से जाकर मिल सकें...... ऐसा ही अवसर तिब्बत से बाहर रह रहे तिब्बतियों को भी दिया जाना चाहिए। ऐसे ही प्रबन्ध से हम तिब्बत के भीतर की वास्तविक स्थिति से परिचित हो पाएंगे।"

1978 के अन्त में हाँगकाँग स्थित सिन्हुआ समाचार एजेंसी के निदेशक श्री ली जुइसिन ने एक पारस्परिक मित्र की सहायता से दलाई लामा के बड़े भाई श्री ग्यालो थोन्डुप से सम्पर्क किया था। जनवरी 1979 में एक बैठक का आयोजन हुआ जिसमें श्री ली ने देंग शियाओपिंग की ओर से श्री थोन्डुप को

तिब्बत समस्या पर विचार करने के लिए बीजिंग निमन्त्रित किया। श्री थोन्डुप ने दलाई लामा की सहमति से फरवरी 1979 के अन्त में बीजिंग की एक निजी यात्रा की।

श्री थोंडुप बीजिंग में प्रमुख चीनी अधिकारियों से मिले। चीनी अधिकारियों ने बताया कि 'गैंग ऑफ फॉर' के प्रभाव के दौरान चीन को उद्योग और कृषि के क्षेत्र में बहुत क्षति उठानी पड़ी है। इसी कारण से तिब्बत में भी हानि हुई है। उन्होंने बताया कि 1959 का तिब्बती विद्रोह भी अनेक कारणों से हुआ जिसके लिए दलाई लामा और तिब्बत के लोगों को दोष नहीं दिया जा सकता।

देंग श्याओ पिंग ने थोंडुप के साथ बातचीत में कहा कि सौ बार सुनने की अपेक्षा एक बार अपनी आँखों से देखना अधिक विश्वसनीय है इसलिए वे सभी आयु वर्गों के निर्वासित तिब्बतियों को तिब्बत में निमन्त्रित करेंगे ताकि वे स्यवं तिब्बत के हालात देख सकें। देंग ने कहा कि वह तिब्बतियों के साथ बैठकर सारी समस्याओं को सुलझाने के लिए तैयार हैं बशर्ते पूर्ण आज़ादी का मसला न उठाया जाए।

दलाई लामा और तिब्बत सरकार ने इसका सकारात्मक उत्तर देते हुए 1979-80 में तथ्य जानने के लिए तीन दल तिब्बत में भेजे। चौथे दल को भेजने की भी योजना बनी जिसमें सभी सम्प्रदायों के बौद्धों और अन्य लोगों को भेजने का विचार किया गया। जिसके 16 सदस्य थे। परन्तु 6 अगस्त 1980 को चीन सरकार द्वारा सूचित किया गया कि वह तिब्बत में इस समय अधिक ठण्ड होने के कारण तथा कुछ विशेष विकास कार्यों के चलते इस दल का स्वागत करने में असमर्थ है। इस प्रकार चौथा दल नहीं जा सका।

देंग श्याओ पिंग के निमन्त्रण के विषय में चीन की सरकार को बार-बार स्मरण-पत्र भेजने के पश्चात् जुलाई 1985 में चौथे दल को पूर्व मन्त्री डब्लयू जी कुण्देलिंग की अध्यक्षता में तिब्बत के उत्तर-पूर्वी भाग में जाने की आज्ञा दी गई। इस यात्रा के अन्त में दल ने तिब्बत की समस्याओं के विषय में चीन सरकार को सूचित किया और उन्हें दूर करने के लिए कहा। इसके उपरान्त किसी दल को चीन में जाने की आज्ञा नहीं दी गई।

परन्तु फिर भी दलाई लामा और तिब्बत की निर्वासित सरकार द्वारा चीन सरकार के साथ अच्छे सम्बन्ध और समझ स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा। दलाई लामा और तिब्बत सरकार ने विश्वास जगाने वाले अनेक कदम भी उठाए।

21 जुलाई, 1980 को यह सुझाया गया कि अपने सम्बन्धियों से मिलने जाने के इच्छुक तिब्बतियों पर से यात्रा-प्रतिबन्ध उठा लिए जाएं। इसे बीज़िंग ने अस्वीकार कर दिया। तिब्बत में रहने वाले उन तिब्बतियों की पृष्ठभूमि की पूरी तरह पड़ताल की जाती है जो बाहर जाना चाहते हैं और बहुत बार तो उन्हें अपने कुछ सम्बन्धी बन्धकों के रूप में पीछे छोड़ देने पड़ते हैं। इसी प्रकार निर्वासित तिब्बतियों को भी चीनी अधिकार-पत्रों पर यात्रा करनी पड़ती है जिसमें उन्हें ''अनिवासी चीनी'' दिखाया जाता है।

सितम्बर 1980 में निर्वासित तिब्बत सरकार ने तिब्बत में सहायता के लिए लगभग पचास प्रशिक्षित तिब्बती अध्यापक भेजने का प्रस्ताव किया। इसके उत्तर में चीन ने इस प्रस्ताव का यह कहकर टाल दिया कि ये युवा अध्यापक भारत के सुविधापूर्ण वातावरण में पलकर बड़े हुए हैं इसलिए तिब्बत के कठोर जीवन में अपने को ढाल नहीं सकेंगे। इसके स्थान पर उन्होंने प्रस्ताव रखा कि पहले ये अध्यापक चीन के भीतर विभिन्न राष्ट्रीय विद्यालयों में कार्य करें। तिब्बती सरकार ने उत्तर दिया कि तिब्बती अध्यापक तिब्बत की परिस्थितियों से पूरी तरह परिचित हैं और जानते हैं वहां कैसी सुविधाएं हैं। जब उनके पास कोई बहाना न रहा तो उन्होंने असंभव सी शर्तें रखी जिसके अनुसार कहा गया कि तिब्बती अध्यापक पहले चीनी नागरिकता स्वीकार करें।

लगभग इसी समय तिब्बत सरकार द्वारा बीजिंग में सम्पर्क कार्यालय खोलने का भी प्रस्ताव किया गया था जिससे अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो सकें परन्तु इसे भी अस्वीकार कर दिया गया।

14 दिसम्बर 1980 को निर्वासित तिब्बत सरकार ने चीन सरकार से प्रार्थना की कि तिब्बत में रह रहे ग्यारह तिब्बती विद्वानों को तिब्बती साहित्य पर आयोजित गोष्ठी में भाग लेने की अनुमति दी जाए। इसे सीधे तौर पर ठुकरा दिया गया।

मार्च 13, 1981 को दलाई लामा ने देंग श्याओ पिंग को पत्र लिखा जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा था – "समय आ गया है कि हम अपने विवेक को सहिष्णुता और उदारता की भावना से तीव्रता से प्रयोग करें ताकि तिब्बती लोगों को असली प्रसन्नता प्राप्त हो सके। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं पूरी मानवता के कल्याण के लिए विशेषकर निर्धन और निर्बल के लिए प्रतिबद्ध हूँ और ऐसा करते समय मैं देश की सीमाओं से ऊपर उठा हूँ और भरसक प्रयत्नरत हूँ। मुझे विश्वास है कि उपरोक्त बातों पर आप मुझे अपनी प्रतिक्रिया से अवगत करवाएंगे।"

इसका कोई उत्तर नहीं आया। इसके स्थान पर 28 जुलाई 1981 को मुख्य सचिव हू याओबांग ने श्री ग्यालो थोंडुप को एक दस्तावेज दिया जिसमें 'दलाई लामा के प्रति पांच सूत्रीय नीति' शीर्षक से तिब्बत समस्या को दलाई लामा की व्यक्तिगत स्थिति तक सीमित करने का प्रयास किया गया।

क्योंकि मूल विषय भविष्य में तिब्बतियों के कल्याण का था इसलिए 1982 में दलाई लामा ने एक तीन-सदस्यीय उच्चस्तरीय दल को चीनी नेतृत्व के साथ बातचीत करने के लिए बीजिंग भेजा। इस दल ने चीनी नेतृत्व के सम्मुख विचारार्थ अनेक खुले प्रस्ताव रखे।

फरवरी 1983 में दलाई लामा ने 1985 के आसपास तिब्बत जाने की इच्छा प्रकट की। इसी समय तिब्बत में तथाकथित "प्रदूषण विरोधी अभियान" के अन्तर्गत अनेक तिब्बतियों को जेल में डाल दिया गया और दमन का एक और दौर चल पड़ा।

अक्तूबर 1984 में एक और तीन-सदस्यीय उच्चस्तरीय दल बीजिंग भेजा गया जो कि तिब्बत में तत्कालिक दमन को रोकने, दलाई लामा की तिब्बत यात्रा पर विचार करने तथा आगे बातचीत की संभावनाएं तलाश करने के लिए गया था। इन सब सुझावों के प्रति चीन की प्रतिक्रिया नकारात्मक थी। इन द्विपक्षीय सम्पर्कों को गुप्त रखने के विरुद्ध चीन सरकार ने इनका सार्वजनिक रूप से निषेध करना उचित समझा।

इससे स्पष्ट है कि दलाई लामा और तिब्बत सरकार ने चीन सरकार के साथ द्विपक्षीय, सीधे और स्पष्ट सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास किए। जब

कोई रास्ता नहीं बचा तो दलाई लामा को विवश होकर अपनी स्थिति विश्व के सामने रखनी पड़ी और अन्तर्राष्ट्रीय सहायता की मांग करनी पड़ी।

21 सितम्बर 1987 को अमरीकी संसद के मानवाधिकार दल को सम्बोधित करते हुए दलाई लामा ने तिब्बत के लिए पाँच सूत्रीय शान्ति योजना रखी। पाँच सूत्र थे :

* सम्पूर्ण तिब्बत को शान्ति का क्षेत्र घोषित करना।
* चीन की जनसंख्या स्थानान्तरण नीति को समाप्त करना जिससे तिब्बत का अस्तित्व ही खतरे में पड़ा है।
* तिब्बती लोगों के मूल अधिकारों और प्रजातान्त्रिक स्वतन्त्रता का सम्मान।
* तिब्बत के प्राकृतिक पर्यावरण को पुन: जीवित करना तथा इसकी रक्षा करना और चीन द्वारा तिब्बत में आण्विक अस्त्र तैयार करने और आण्विक मलवा जमा करने की नीति का त्याग।
* तिब्बत के भविष्य और तिब्बती तथा चीनी लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में सच्चाई के साथ बातचीत प्रारम्भ करना।

17 अक्तूबर 1987 को इन प्रस्तावों को ठुकराते हुए चीन ने दलाई लामा पर आरोप लगाया कि वह अपने और चीन सरकार के बीच खाई बढ़ा रहे हैं। चीन की प्रतिक्रिया असभ्यता को छूती थी फिर भी दलाई लामा ने अपने पक्ष को स्पष्ट करते हुए एक विस्तृत चौदह-सूत्रीय टिप्पणी 17 दिसम्बर 1987 को चीन सरकार को भेजी।

15 जून 1988 को स्ट्रॉस्बर्ग में यूरोपीय संसद के समक्ष दलाई लामा ने एक और विस्तृत प्रस्ताव रखा जिसमें चीन के साथ पाँच सूत्रीय शान्ति प्रस्तावों में से पाँचवें बिन्दु के अनुरूप आगे बातचीत की विस्तृत रूपरेखा सुझाई गई थी।

इस भाषण की अग्रिम प्रति चीन सरकार को उनके दिल्ली स्थित दूतावास के माध्यम से उपलब्ध करवायी गयी थी। इसके बाद दलाई लामा के प्रतिनिधि दिल्ली स्थित चीनी दूतावास के प्रमुख अधिकारी से 22 अगस्त और 29 अगस्त को मिला ताकि चीन सरकार ने अखबारी विज्ञप्तियों में इस विषय में जो सन्देह व्यक्त किए थे उनका निराकरण किया जा सके।

अन्य बातों के साथ-साथ प्रतिनिधि ने इस बात पर बल दिया कि स्ट्रॉस्बर्ग घोषणाएँ देंग श्याओ पिंग के उस कथन के अन्तर्गत ही थी जिसमें तिब्बत की आज़ादी के सिवा अन्य सभी बातों पर विचार करने का आश्वासन दिया गया था। स्ट्रॉस्बर्ग प्रस्ताव में दलाई लामा ने चीन के साथ सहयोग की बात कही थी न कि अलगाव की।

21 सितम्बर, 1988 को दिल्ली स्थित चीनी दूतावास ने दलाई लामा के एक उच्च अधिकारी को सूचित किया था कि उसकी सरकार दलाई लामा के प्रतिनिधियों से उनके बताए समय और स्थान पर बातचीत करने के लिए तैयार हैं।

चीनी घोषणा का स्वागत करते हुए काशाग (मन्त्री परिषद) ने 23 सितम्बर 1988 को कहा, ''इस सकारात्मक प्रतिक्रिया से हम यह आशा करते हैं कि इस बार चीन सच्चे मन से इस समस्या का हल ढूँढना चाहता है।''

दिल्ली स्थित चीनी दूतावास के माध्यम से 25 अक्तूबर 1988 को चीन सरकार को यह संदेश भिजवाया गया कि जेनेवा जैसे सुविधाजनक और निष्पक्ष स्थान पर जनवरी 1989 में बातचीत प्रारम्भ की जा सकती है।

नवम्बर 1988 के प्रारम्भ में चीन के युनाइटिड फ्रंट वर्क डिपार्टमेंट के अध्यक्ष श्री यांग मिंफु ने श्री ग्यालो थोंडुप को सूचित किया कि स्ट्रॉसबर्ग प्रस्तावों के कुछ अंशों पर तिब्बत-चीन में मतभेद हैं परन्तु फिर भी बातचीत द्वारा समस्या को सुलझाया जा सकता है।

परन्तु 18 नवम्बर 1988 को चीन सरकार ने अपने दिल्ली स्थित चीनी दूतावास के माध्यम से बातचीत के लिए निम्नलिखित पूर्व शर्तें रखीं-

* जिस प्रकार से बातचीत के स्थान की सार्वजनिक घोषणा की गई, चीन सरकार उसकी भर्त्सना करती है और अनुभव करती है कि बातचीत के लिए उपयुक्त स्थान बीजिंग है।
* दलाई लामा द्वारा मनोनीत छह सदस्यों का दल चीन को स्वीकार नहीं है क्योंकि ये लोग अतीत में अलगाववादी कार्यवाही में लगे रहे हैं। डच वकील की मौजूदगी भी स्वीकार्य नहीं क्योंकि बातचीत आन्तरिक मामलों पर होनी है।

* चीन सरकार सीधे दलाई लामा से बातचीत करना चाहेगी, परन्तु दलाई लामा के विश्वस्त प्रतिनिधि जैसे कि ग्यालो थोंडुप के साथ भी बातचीत कर सकती है।
* स्ट्रॉस्बर्ग प्रस्ताव बातचीत का आधार नहीं बन सकते, बातचीत की पूर्वशर्त यही है कि तिब्बती ''मूल मातृभूमि'' की एकता का समर्थन करेंगे।

इस समाचार से तिब्बत सरकार को निराशा हुई क्योंकि यह प्रस्ताव चीन सरकार की पहले की सार्वजनिक घोषणाओं और सरकारी वक्तव्यों के बिल्कुल विपरीत थी।

5 दिसम्बर 1988 को तिब्बत सरकार ने इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा –

* क्योंकि चीन सरकार ने बातचीत के लिए समय और स्थान निर्धारित करने की जिम्मेदारी दलाई लामा पर छोड़ दी थी इसलिए उन्होंने सहज ढंग से जेनेवा में, जनवरी 1989 में बातचीत का प्रस्ताव रखा था।
* अनेक अवसरों पर चीन सरकार ने सार्वजनिक घोषणाओं और सरकारी वक्तव्यों के माध्यम से स्पष्ट किया था कि चीन सरकार दलाई लामा के किसी भी प्रतिनिधि से बातचीत के लिए तैयार है। दलाई लामा द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि मण्डल से बातचीत करने से चीन सरकार क्यों इन्कार कर रही है, यह समझना कठिन है। यह दलाई लामा की ही विशेषाधिकार होना चाहिए कि वह बातचीत के लिए अपना प्रतिनिधि किसे बनाएं। डा० माइकेल वॉन वाल्ट वान पराग बातचीत करने वाले दल के सदस्य नहीं हैं। वह केवल कानूनी सलाहकार हैं।
* चीन सरकार के परामर्श के अनुसार ग्यालो थोंडुप को वार्तादल के साथ एक सलाहकार के तौर पर संबद्ध किया जाएगा।
* तिब्बत के भविष्य पर न्यायोचित और सार्थक वार्ता करने के लिए आवश्यक है कि दोनों तरफ से कोई भी पूर्व शर्तें न रखी जाएं। स्ट्रासबर्ग के प्रस्ताव में जो कहा गया है वह यथार्थपरक बातचीत का आधार बन सकता है।

जनवरी 1989 में तिब्बत में पंचेन लामा की मृत्यु हो गई और दलाई लामा ने एक दस-सदस्यीय धार्मिक दल शिगाचे स्थित टाशील्हुनपो बौद्ध विहार तथा ल्हासा, कुम्बुम और लबरांग टाशीक्यील में पंचेन लामा के लिए प्रार्थना करने, कालचक्र धर्मानुष्ठान करने हेतु भेजने का प्रस्ताव किया। चीन ने इस सुझाव को ठुकराते हुए कहा कि इतने बड़े पैमाने पर पूजा-पाठ या प्रार्थनाओं की कोई पूर्व-परम्परा नहीं रही है और प्रतिनिधि दल के दो सदस्य भी उन्हें स्वीकार नहीं हैं क्योंकि वे तिब्बती मन्त्रीमण्डल के सदस्य हैं। तिब्बत सरकार ने उन दोनों को दल से निकालने का प्रस्ताव रखा और एक बार फिर चीन सरकार के सम्मुख दल भेजने का प्रस्ताव रखा।

17 मार्च 1989 को चीनी दूतावास के माध्यम से उत्तर मिला। चीन सरकार ने दलाई लामा के प्रतिनिधियों के रूप में दो या तीन लामाओं को ही भेजने का प्रस्ताव किया। लामा बीजिंग के मार्ग से केवल टाशील्हुनपो तक जाएंगे और प्रार्थना के पश्चात् सीधे भारत लौट जाएंगे। इसी सन्देश में चीन सरकार ने निर्वासित तिब्बत सरकार पर ल्हासा में विद्रोह भड़काने का आरोप लगाया और दलाई लामा की इसलिए भर्त्सना की कि उन्होंने ल्हासा में मार्शल लॉ उठवाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी से अपील की थी।

23 मार्च 1989 को तिब्बत सरकार ने चीनी दूतावास को निम्नलिखित उत्तर दिया, ''स्वर्गीय पंचेन रिन्पोछे की मृत्यु के अवसर पर धार्मिक श्रद्धा व्यक्त करने और विशेष कालचक्र प्रार्थना उत्सव आयोजित करने के लिए तिब्बत जाने वाले प्रतिनिधि मण्डल को उस समय मना किया गया जब कि चीन सरकार की इच्छानुसार प्रतिनिधि मण्डल के कुछ सदस्यों को बदलने की बात मान ली थी और इस प्रार्थना के लिए आवश्यक लामाओं की संख्या के विषय में भी सूचित कर दिया था। यह बात हमारे लिए एक और निराशा का अनुभव है। स्वाभाविक है कि दो या तीन भिक्षुओं को भेजने का कोई अर्थ नहीं है।

''हम स्पष्ट रूप से इस आरोप का खण्डन करना चाहते हैं कि हम तिब्बत में गड़बड़ी के लिए किसी भी प्रकार से जिम्मेदार हैं अथवा हम तिब्बत में प्रशिक्षित आतंकवादी चोरी-छुपे प्रवेश करा रहे हैं। हम चाहेंगे कि सरकार

इन गम्भीर आरोपों के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करे और किसी स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन द्वारा तिब्बत में गड़बड़ी के वास्तविक कारण की जाँच करवाए।''

''जब स्थितियां वश में न रहें तो प्रत्येक व्यक्ति को सहायता मांगने का अधिकार है। और अधिक रक्तपात और दमन रोकने के लिए दलाई लामा ने विश्व के अनेक नेताओं से प्रार्थना की जिनमें अध्यक्ष देंग शियाओ पिंग भी एक थे। परमपूज्य की प्रत्यक्ष बातचीत और समस्या के शान्तिपूर्ण समाधान की कोशिशों से सभी परिचित हैं।

''हम एक बार फिर चीन सरकार से प्रार्थना करते हैं कि वे प्रस्तावित वार्ता को एक बार पुनः प्रारम्भ करें। किसी न किसी बहाने से इसे बार-बार टालना उचित नहीं होगा। परमपूज्य ने यह प्रस्ताव पिछले जून में रखा था और बातचीत इस वर्ष जनवरी में प्रारम्भ करने की बात कही थी। 5 दिसम्बर 1988 से हमने लिखित रूप में और दिल्ली दूतावास के माध्यम से सन्देश के जरिए अपना सच्चा स्पष्टीकरण भेजा था ताकि चीन सरकार के सन्देह और आपत्ति दूर हो सकें। वातावरण खराब करने और बातचीत में देरी करने का जो आरोप हम पर अभी-अभी लगाया गया है वह पूरी तरह अनुचित है।''

''अपने आज तक के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि चीन सरकार ने अपने तानाशाही और दादागिरी के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं किया है। यदि यही रवैया जारी रहता है तो बातचीत में किसी तीसरे पक्ष की आवश्यकता बनी रहेगी जिससे कि भविष्य में दोषारोपण और दबाव का अवसर न मिले।''

1988 में तिब्बत में मार्शल लॉ लगने के पश्चात् भी दलाई लामा ने एक प्रतिनिधि मण्डल हाँगकाँग भेजने का प्रस्ताव किया था जो चीन से बातचीत आगे बढ़ाने की बात कहता। भविष्य में होने वाली बातचीत के लिए अच्छा वातावरण तैयार करने हेतु दलाई लामा ने मार्शल लॉ उठाने की अपील की थी।

17 मई, 1989 को चीनी दूतावास के माध्यम से प्राप्त उत्तर में चीन सरकार द्वारा मार्शल लॉ लगाने का पक्ष लेते हुए कहा गया कि, ''मुट्ठी भर अपराधियों से निपटने के लिए जो कि पीटने, लूटने और ठगी के कामों में लगे थे मार्शल लॉ लगाया जाना सर्वथा उचित था'' और कहा कि उसे उठाने की

अपील करना अपराधियों की सहायता करने के समान था। उत्तर में आगे कहा गया कि दलाई लामा की यह सुझाव कि तिब्बत को एक शान्ति क्षेत्र घोषित कर दिया जाए कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा। चीन सरकार ने हाँगकाँग में प्रारम्भिक बातचीत के विषय में कोई उत्तर नहीं दिया।

दलाई लामा ने अपने बातचीत के सुझाव का सकारात्मक उत्तर पाने के लिए दो वर्ष तक प्रतीक्षा की। इसके पश्चात् अपने 10 मार्च 1991 के वक्तव्य में उन्होंने कहा कि यदि चीन कोई सकारात्मक उत्तर नहीं देता है तो वे स्ट्रॉसबर्ग प्रस्ताव में कही गई बातों को निभाने के दायित्व से मुक्त होंगे।

25 मार्च 1991 को दिल्ली स्थित चीनी दूतावास के माध्यम से चीन सरकार को सन्देश दिया गया कि दलाई लामा, पंचेन लामा के अवतार को खोजने में सहायता करना चाहते हैं। इसमें सहायता करने के लिए उच्च लामाओं और पुरोहितों का एक दल भेजने का प्रस्ताव किया गया जो कि ल्हामोई ल्हाछ़ो जाकर जो ल्हासा के निकट एक पवित्र झील है, झील की भविष्य वाणियों के आधार पर वास्तविक अवतार को खोजने का काम करेंगे। तीन मास के पश्चात् उत्तर आया कि इस कार्य में बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और यह कार्य (पंचेन लामा का उत्तराधिकार खोजना) टाशील्हुन्पो बौद्ध विहार के अधिकारी स्वयं कर लेंगे।

इन हताश और निराश कर देने वाले अनुभवों के रहते हुए भी दलाई लामा गतिरोध तोड़ने के इच्छुक थे। अक्तूबर 1991 में भाषण देते हुए दलाई लामा ने चीन की ओर फिर हाथ बढ़ाया और प्रस्ताव किया कि वे व्यक्तिगत रूप से तिब्बत में जाकर स्थिति का जायजा लेने को तैयार हैं और उनके साथ कुछ चीनी अधिकारी भी रह सकते हैं।

इस भावना के अन्तर्गत चीनी प्रधानमन्त्री ली फंग के दिसम्बर 1991 में भारत आगमन पर उन्होंने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। इस सकारात्मक और रचनात्मक पहल को भी ठुकरा दिया गया।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए 23 जनवरी 1992 को तिब्बती जन प्रतिनिधि सभा (निर्वासित तिब्बती संसद) ने यह प्रस्ताव पारित किया कि निर्वासित तिब्बत सरकार को अब आगे चीन सरकार से तब तक बातचीत की

पहल नहीं करनी चाहिए जब तक कि उस ओर से कोई सकारात्मक कदम नहीं उठता। प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि यदि सीधे चीन की ओर से अथवा किसी तीसरे पक्ष की ओर से यदि बातचीत की पहल होती है तो तिब्बत सरकार को बातचीत से कोई संकोच नहीं होगा।

1992 के अप्रैल मास में दिल्ली स्थित चीनी राजदूत ने श्री ग्यालो थोंडुप से बातचीत की और कहा कि अतीत में चीन सरकार का रवैया 'रूढ़िवादी' कठोर रहा है परन्तु अब वे 'लचीला' रवैया अपनाने को तैयार हैं यदि तिब्बती यथार्थपरक ढंग से विचार करने को तैयार हों। उन्होंने श्री थोंडुप को चीन आने का निमन्त्रण भी दिया। जून में दलाई लामा और निर्वासित तिब्बत सरकार की सहमति से श्री थोंडुप बीजिंग गए।

वापिस आने पर उन्होंने दलाई लामा और मन्त्रीमण्डल को अपनी यात्रा के विषय में सूचित किया। तिब्बती जन प्रतिनिधि सभा द्वारा अपनी तीसरी बैठक में इस रिपोर्ट पर विचार किया गया। थोंडुप को जो बताया गया था उसके ठीक विपरीत पता चला कि चीन सरकार के रवैये में कोई नरमी नहीं आई है। वास्तव में दलाई लामा और निर्वासित सरकार पर गम्भीर आरोप लगाए गए।

इसलिए जून 1993 में निर्वासित तिब्बत सरकार ने चीन द्वारा उठाए गए सवालों का समाधान करने के लिए तथा अपना पक्ष चीन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए एक दो-सदस्यीय दल भेजा गया। यह दल दलाई लामा की ओर से राष्ट्रपति देंग शियाओ पिंग और जियांग जेमिन के नाम एक व्यक्तिगत पत्र और विस्तृत स्मरण-पत्र लेकर गया था।

स्मृति-पत्र में दलाई लामा ने कहा था, ''यदि चीन चाहता है कि तिब्बत चीन के साथ रहे तो उसे आवश्यक स्थितियां पैदा करनी चाहिएं। चीन सरकार के लिए समय आ गया है कि वे ऐसा मार्ग दिखाएँ जिससे तिब्बत और चीन मित्रतापूर्वक रह सके। तिब्बत की वास्तविक स्थिति के विषय में विस्तृत सोपानबद्ध रूपरेखा तैयार की जानी चाहिए। यदि ऐसी कोई स्पष्ट रूपरेखा तैयार की जाती है तो भले ही उस पर सहमति हो न हो परन्तु हम तिब्बती यह निर्णय ले सकेंगे कि हमें चीन के साथ रहना है अथवा नहीं। यदि हम

तिब्बतियों को अपने मूलभूत अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, तो हम इतने बुद्धिहीन नहीं हैं कि चीन के साथ रहने के लाभों को न जान सकें।''

इस सुझाव को भी अनदेखा किया गया। इसके विपरीत चीन न स्वीकार करने योग्य पूर्व शर्तें लगाता रहा और बातचीत का दायरा समेट कर केवल दलाई लामा की वापसी तक सीमित करना चाहता था।

चीनी नेतृत्व की ऐसी दुराग्रही नीति के चलते, मार्च 10, 1994 को दलाई लामा ने अपने वक्तव्य में कहा – ''मुझे अब मान लेना चाहिए कि मेरी नीति न तो बातचीत को आगे बढ़ाने में सफल रही और न ही तिब्बत में स्थिति सुधारने में। मुझे इस बात का भी आभास है कि तिब्बत में रहने वाले और तिब्बत से बाहर रह रहे अधिकाधिक लोग मेरे द्वारा तिब्बत की पूर्ण आजादी की माँग न उठाने से निराश हो रहे हैं।''

दलाई लामा और तिब्बत सरकार का दृढ़ विश्वास है कि तिब्बत के लिए शान्तिपूर्ण समाधान खोजने हेतु यह आवश्यक है कि दोनों पक्ष बिना शर्त के बातचीत करें। यह उत्साहजनक है कि विश्व की अधिकाधिक सरकारें तिब्बत के इस तर्कसंगत पक्ष का साथ दे रही हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों को छूता है। यह तिब्बत की स्थिति के मूलभूत प्रश्न को छूता है। इस पुस्तिका में तिब्बत पर 'चीनी आधिपत्य' के अनौचित्य तथा तिब्बती जनता के 'आत्म-निर्णय' का अधिकार; चीनी आधिपत्य के विरोध से जुड़ी घटनाएं और दलाई लामा का भारत की ओर निष्क्रमण; चीनी आधिपत्य में तिब्बत में मानवाधिकारों की स्थिति; धार्मिक स्वतन्त्रता का निषेध; तिब्बती पर्यावरण की स्थिति; तिब्बत के सैनिकीकरण से जुड़े मुद्दे तथा तिब्बत-समस्या के समाधान के लिए चल रहे प्रयासों को छुआ गया है।